।। ओ३म् ।।

पाक्षिक

परोपकारी

• वर्ष ६१ • अंक ८ • मूल्य ₹१५ महर्षि दयानन्द की स्थानापन्न परोपकारिणी सभा का मुखपत्र • अप्रैल (द्वितीय) २०१९

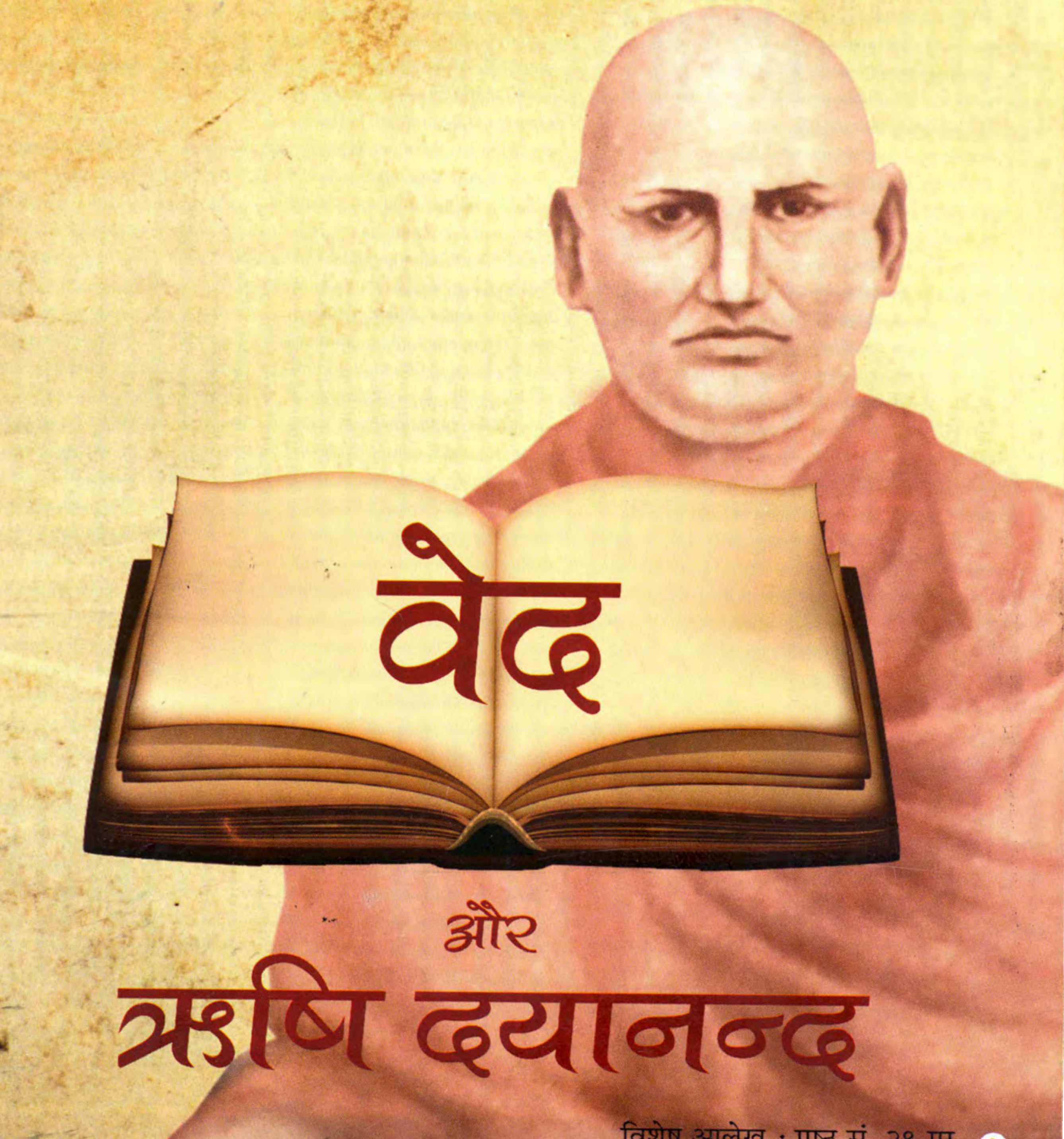

विशेष आलेख : पृष्ठ सं. २९ पर

ऋषि दयानन्द के वास्तविक चित्रों का विवरण, पत्रिका के आवरण पृष्ठ २, ४३ व ४४ पर

छाती के नीचे वस्त्र लपेटे हुए आसन से बैठे

ऋषि दयानन्द संवत् १९२४ (=१८६७) के कुम्भ के मेले में हरिद्वार जाते हुए मेरठ में ठहरे थे। उसी समय उनका यह चित्र लिया गया था। चित्र से भी ऋषि दयानन्द की आयु ३५-४० के मध्य की प्रतीत होती है और मुखमण्डल बड़ा तेजस्वी है। मुझे यह चित्र सन् १९२६ में ऋषि दयानन्द के पत्रों का अन्वेषण करते हुए मेरठ से मिला था।

सर्वस्व त्यागी दण्डधारी खड़े हुए

ऋषि दयानन्द का यह चित्र विक्रम सं. १९२४ (=सन् १८६७ ई.) में हरिद्वार के कुम्भ मेले (जहाँ कुटिया पर पाखण्ड खण्डनी पताका लगी हुई थी) के अन्तिम समय में लिया गया था, ऐसा पुराने आर्य व्यक्तियों से ज्ञात हुआ है। इसी चित्र के आधार पर चित्रशाला पूना द्वारा एक बड़ा चित्र छपा था। यह मैंने २५ दिसम्बर १९२६ को फर्रुखाबाद के महाशय झुन्नीलाल जी आर्य (वृद्ध) के पास देखा था।

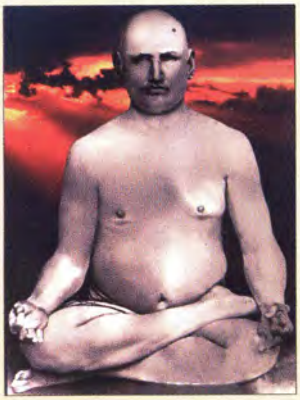

समाधि दशा में कौपीन मात्र धारण किये

यह चित्र लगभग सं. १९२५ (सन् १८६८) का है। इसमें ऋषि चौकी पर समाधि मुद्रा में कौपीन मात्र धारी नग्न बैठे हुए हैं, पास में दण्ड रखा हुआ है। छोटे बालों की दाढ़ी पर भस्म लगी हुई है। यह चित्र फर्रुखाबाद में गंगा के तट पर लाला श्यामलाल सिद्धगोपाल जगन्नाथ की बड़ी विश्रान्त पर लिया गया था, ऐसा कहा जाता है। यह चित्र मुझे ऋषि दयानन्द के पत्रों का अन्वेषण करते हुए ३१ जनवरी १९२७ को रायबहादुर लाला दुर्गादास के पुत्र बा. चन्द्रप्रकाश जी से (उनके चित्रों वाली पुरानी एल्बम में से) मिला था।

कुर्सी पर वस्त्र पहने कर बैठे हुए

यह चित्र आश्विन सं. १९३१ (अक्टूबर सन् १८७४) में श्रीमान् कृष्णराव जी गोलवलकर एक्स्ट्रा असिस्टैण्ट कमिश्नर जबलपुर ने ऋषि दयानन्द को अपने स्थान पर ले जाकर और अपने यहाँ से वस्त्र पहना कर कुरसी पर बैठा कर खिंचवाया था। इस चित्र के पास टेबुल के सहारे मुड़ी मूठ की बेंत रखी है। इस चित्र को देवेन्द्र बाबू ने स्वयं वहाँ जाकर देखा था।

महर्षि दयानन्द सरस्वती की
उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा
का मुख पत्र

वर्ष : ६१ अंक : ०८

दयानन्दाब्द: १९५

विक्रम संवत्: चैत्र शुक्ल २०७६

कलि संवत्: ५१२०

सृष्टि संवत्: १,९६,०८,५३,१२०

सम्पादक

डॉ. सुरेन्द्र कुमार

प्रकाशक-परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१
दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४

मुद्रक-श्री मोहनलाल तँवर
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
दूरभाष : ०१४५-२४६०८३१

परोपकारी का शुल्क

भारत में

एक वर्ष-३०० रु.
पाँच वर्ष-१२०० रु.
आजीवन -३००० रु.
एक प्रति - १५/- रु.

विदेश में

वार्षिक-५० यू.के. पाउण्ड/८० यू.एस.डॉलर
द्विवार्षिक-९५ पाउण्ड/१५२ डॉलर
त्रिवार्षिक-१४० पाउण्ड/२२५ डॉलर
आजीवन (१५वर्ष)-५००पा./८०० डॉ.
एक प्रति - ३ पाउण्ड
एक प्रति - ४ डॉलर

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
ऋषि उद्यान : ०१४५-२६२१२७०

ओ३म्

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्मपरोपकाराः।।

RNI. No. ३९५९ / ५९

परोपकारी

अप्रैल द्वितीय २०१९

अनुक्रम

०१. भारत के लिए धर्मनिरपेक्ष-नीति...	सम्पादकीय	०४
०२. मृत्यु सूक्त-२७	डॉ. धर्मवीर	०७
०३. कुछ तड़प-कुछ झड़प	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	१०
०४. पाठकों के विचार		१२
०५. आयुष्मान् भव-एक जीवन दर्शन	रामनिवास गुणग्राहक	१४
०६. आर्यसमाज और युवा पीढ़ी	विनोद कालरा	१८
०७. ऋषि दयानन्द की जन्मतिथि...	ज्वलन्तकुमार शास्त्री	२०
०८. शङ्का समाधान- ४६	डॉ. वेदपाल	२८
०९. वेद और ऋषि दयानन्द	मदनमोहन विद्यासागर	२९
१०. राष्ट्रीयता पर पाश्चात्य प्रभाव	मोहनलाल तँवर	३५
११. आर्यजगत् के समाचार		४२

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएं
www.paropkarinisabha.com→gallery→videos

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

भारत के लिए धर्मनिरपेक्ष-नीति के दूरगामी दुष्परिणाम

एक सुदीर्घ कालावधि के पश्चात् भारत सन् १९४७ में पराधीनता से मुक्त हुआ। उसका अपना शासन स्थापित हुआ, संप्रभुता-सम्पन्न देश बना, अपना संविधान क्रियान्वित हुआ। उसको कहा तो गया 'भारत का संविधान' किन्तु उसमें निहित अनेक अवधारणाएँ विदेशी मानसिकता से आयातित थीं। उन्हीं में से एक अवधारणा है-'धर्मनिरपेक्ष (सेक्युलर) राष्ट्र' की अवधारणा।

धर्म के नाम पर नाक-भौंह सिकोड़ने वाले वामपंथी, वर्तमान शिक्षा-पद्धति में शिक्षित-दीक्षित तथाकथित बुद्धिजीवी जन संविधान में उल्लिखित इस विचारधारा पर यों इतराने लगे मानो भारत के संविधान में प्रगति का अद्‌भुत दर्शन समाविष्ट हो गया और अब इसी विचारधारा के आधार पर भारत का समग्र उत्थान होगा, नैतिकता का विकास होगा, चारित्रिक उन्नयन होगा, जीवन-मूल्यों का प्रसार होगा, सुख-शान्ति का साम्राज्य बनेगा, साम्प्रदायिक सद्‌भाव का वातावरण निर्मित होगा। इसी से देश बढ़ेगा, इसी से देश बचेगा। इसी से देश की एकता-अखण्डता अक्षुण्ण रहेगी। किन्तु परिणाम क्या निकला?

दार्शनिक दृष्टि से इस शब्द की कुछ भी आकर्षक व्याख्या कल्पित करते रहें किन्तु सामान्य सर्वसुलभ अर्थ में इससे लोगों में जो सन्देश गया है वह यह है कि धर्म की कोई अपेक्षा नहीं है, वह अनावश्यक है, व्यर्थ है, उपेक्षणीय है। इस अवधारणा से, धर्म जो कि व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र के लिए अनिवार्य धारणीय और नियामक भाव था, समाज में अनावश्यक हो गया। साथ ही धर्म के जो अनुषंगी आचरण थे, जैसे-नैतिकता, कर्त्तव्यभावना, मर्यादा, आदर्श आदि भी उपेक्षित हो गये। आजादी के इस कालखण्ड में भारत ने भौतिक दृष्टि से पर्याप्त उन्नति की है, किन्तु नैतिक दृष्टि से समाज संस्कार-विहीन हुआ है। राष्ट्रीय चरित्र का ह्रास हुआ है, नैतिक मूल्यों का पतन हुआ है, स्वार्थलिप्सा, आपाधापी, भ्रष्टाचरण बढ़े हैं। कदाचार, अपराध, अन्याय, अपहरण, लूटपाट, बलात्कार बढ़े हैं। आंकड़े बताते हैं कि विश्व के लगभग दो सौ देशों की भ्रष्टाचारी देशों की सूची में भारत का नाम ऊपर के अग्रणी देशों में है।

इसका मुख्य कारण है धर्म को एक पन्थ-मात्र मानकर उसके उदात्त भाव का तिरस्कार करना। धर्मनिरपेक्षता की भ्रान्त अवधारणा और धर्म शब्द की अपव्याख्या ने 'धर्म' जैसे शाश्वत, सार्वकालिक, पवित्र और जीवनोपयोगी विचार को तिरस्कृत कर दिया। धर्म पर आधारित इस देश की परम्परागत संस्कृति-सभ्यता को विनष्ट कर दिया। अतीत में विश्व को चरित्र की शिक्षा-प्रेरणा देने वाला 'विश्वगुरु भारत' स्वयं राष्ट्रीय-चरित्र की दृष्टि से पिछड़ गया। शिक्षा और धर्माचरण ने ही इस देश को 'विश्वगुरु' बनाया था।

धर्मनिरपेक्षता की प्रवृत्ति नास्तिकता को जन्म देती है और नास्तिकता नैतिक-हीनता को। वैदिक दर्शन में धर्म का अटूट सम्बन्ध ईश्वर, जीव, कर्मफल, पुनर्जन्म आदि से है। नास्तिकवादी, वामपंथी, उनसे प्रभावित लोग ईश्वर आदि का अस्तित्व नहीं मानते, अतः धर्म को भी नहीं मानते। इससे धर्मनिरपेक्षता की धारणा का जन्म हुआ। धर्मनिरपेक्षता ने नास्तिकता का विस्तार भी किया है। नास्तिक दर्शन की मान्यता है कि पाप-पुण्य कुछ नहीं है और न इनका बुरा-अच्छा फल मिलता है। यह सिद्धान्त सारे पापों, अपराधों, भ्रष्टाचारों, अन्यायों, अत्याचारों की जड़ है। जब अच्छा-बुरा फल ही नहीं मिलेगा तो मनुष्य अवसर मिलते ही कानून तोड़ने में, भ्रष्टाचार करने में, पाप-अपराध आदि करने में संकोच क्यों करेगा? और श्रेष्ठ कर्म किसलिए करेगा? जब फल नहीं मिलेगा तो वह स्वेच्छाचारितापूर्ण मनस्तुष्टि करेगा। इस प्रकार धर्मनिरपेक्षतावाद मनुष्य को स्वेच्छाचारी होने का लाइसेंस दे देता है। ऐसा मानव महामानव कभी नहीं बन सकता, वह तो फिर से पाशवी संस्कृति की ओर बढ़ेगा।

मनुष्य कोई न कोई आन्तरिक चिन्तन और आचरण निरन्तर करता है। वह यदि धर्मयुक्त होगा तो वहाँ अधर्म-भाव नहीं होगा और यदि अधर्ममय होगा तो वहाँ धार्मिक भाव नहीं होगा। धार्मिक नहीं होगा तो उसका स्थान अधार्मिक ले लेगा, अधार्मिक नहीं होगा तो उसका स्थान धार्मिक ले लेगा। हमारे जीवन और व्यवहार में शिक्षा-दीक्षा से धर्म हटा तो उसके

स्थान पर अधर्म आ बैठा और ऐसा बैठा कि अब हटने का नाम नहीं ले रहा है। अधर्म और स्वार्थ के वशीभूत हुआ इस देश का नागरिक आज पाप-पुण्य में अन्तर नहीं करता। अपराधों का ग्राफ दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा है क्योंकि अपराधों के प्रति घृणा का संस्कार क्षीण हो रहा है। घृणित और क्रूर अपराधों की संख्या बढ़ती जा रही है। पारिवारिक पवित्र मर्यादाएँ छिन्न-भिन्न हो रही हैं। गाँवों-शहरों में, जहाँ कुछ समय पहले अपराधियों का रहना कठिन होता था, आज वहाँ उनकी चौधर चलती है। आज वे वहाँ के सर्वाधिक प्रभावशाली व्यक्ति बन गये हैं। यही भारतीय राजनीति की स्थिति है। वह भ्रष्टाचार और अपराध की प्रतीक बन गयी है। विधानसभाओं और लोकसभा में अपराधियों और मुकदमाग्रस्त सदस्यों/मन्त्रियों का प्रतिशत चिन्ताजनक रूप से बढ़ रहा है। फिर प्रशासनिक अधिकारीगण पीछे क्यों रहें? उनका भी प्रथम लक्ष्य मालामाल होना बन गया है। घोटाले भी पकड़े जाते हैं तो वे करोड़ों में होते हैं। विडम्बना तो यह है कि घोटाला पकड़ने वाला अधिकारी कुछ समय बाद खुद भी घोटाले में पकड़ा जाता है। कार्यपालिका, विधानपालिका, यहाँ तक कि न्याय का मन्दिर कही जाने वाली न्यायपालिका भी समय-समय पर आर्थिक एवं चारित्रिक घोटालों में लिप्त पायी जाती है। विशेष बात यह है कि यह सारा भ्रष्टाचरण जनता की आँखों के सामने और दिन के उजाले में हो रहा है। मानो, जनता ने भी इस सब को मौन स्वीकृति दे दी हो। वातावरण में यह सब परिवर्तन धार्मिक-नैतिक संस्कारों की क्षीणता के कारण हो रहा है। हमने धर्म का तिरस्कार किया, धर्म ने हमारा तिरस्कार कर दिया। इस परिवेश में भी जो लोग मूल्यों के संरक्षण के लिए, नैतिकता की रक्षा के लिए संघर्षरत हैं वे धार्मिक संस्कारों के ही हैं। उन्हीं के आश्रय से कर्त्तव्यबोध जीवित है। उन्हीं के आश्रय से नैतिकता जीवित है। दोनों अन्योन्याश्रित हैं। धर्म के क्षीण होने पर नैतिकता का संकट गहरायेगा। नैतिकता के संकट से कर्त्तव्य का संकट बढ़ेगा और कर्त्तव्य के संकट से समाज में अराजकता और अव्यवस्था का संकट बढ़ेगा। इनके बढ़ने से सुख और शान्ति नष्ट होगी, दु:ख और अशान्ति बढ़ेगी। इसीलिए आचार्य चाणक्य ने कहा है- ''सुखस्य मूलं धर्म:''

अर्थात् राष्ट्र के सुख का मूल धर्म है। इसी प्रकार नैतिकता, व्यवस्था, सुराजकता का मूल हेतु भी धर्म ही है। परिवार और समाज का नियन्त्रक भी धर्म ही है। जब तक इस धरती पर धर्म होगा, यह रहने योग्य रहेगी। जब धर्म का ह्रास होगा तो रहने योग्य नहीं रहेगी। अत: धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा एक भ्रम है, एक दु:स्वप्न है। इसका परिणाम सुखद नहीं हो सकता। यह हजारों वर्षों के राजनीतिक चिन्तन का निष्कर्ष है।

वैदिक संस्कृति में धर्म को आत्मा का मूलभूत नियामक तत्त्व माना है, जो व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र को आत्मप्रेरणा से नियमानुकूल नियन्त्रित करता आया है। वैदिक संस्कृति का एक आधार सूत्र है- 'धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष प्राप्ति।' यह सूत्र वैदिक जीवन का दर्शन है। इसकी व्याख्या यह है कि धर्माचरण समस्त क्रियाकलापों का मानदण्ड है। वही प्रधान तत्त्व है। मनुष्य को अर्थ प्राप्ति भी धर्मानुसार करनी चाहिये और कामनाओं की पूर्ति भी। सांसारिक मनुष्य प्राय: इन दोनों विषयों में अनेक अशुचिताओं का आश्रय ले लेते हैं। वैदिक संस्कृति में इन दोनों क्षेत्रों की अशुचिताओं को धर्मात्मक आत्मानुशासन से नियन्त्रित किया है। धर्मनिरपेक्षतावादी लोगों ने धर्म के इस अद्‌भुत महत्त्व की उपेक्षा करके जहाँ धर्म के वास्तविक स्वरूप को हानि पहुँचायी है वहीं भौतिक स्वेच्छाचारिता का मार्ग प्रशस्त कर दिया है। वे लोग कह सकते हैं कि धर्म की आवश्यकता नहीं है, हम कानून और व्यवस्था के द्वारा सभी अशुचिताओं को नियन्त्रित कर लेंगे। यह उनकी भ्रान्ति ही है, क्योंकि कानून बाह्यनियन्त्रण है। व्यक्ति भयवश और बलात् उसका पालन करता है, जब आत्मप्रेरणाा न हो तो। ऐसा व्यक्ति अवसर मिलते ही कानून तोड़ता है, अत: कानून या व्यवस्था धर्म का स्थान नहीं ले सकते। धर्म आत्मप्रेरणा से, संस्कारों से व्यवस्था का निर्माण करता है। धर्मनिरपेक्षता ने जन-सामान्य को इस महत्त्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक जीवन पद्धति से विहीन कर दिया। परिणामस्वरूप अनेक कानून और व्यवस्थाएँ आज के धर्मनिरपेक्ष समाज में निष्फल हैं।

धर्मनिरपेक्षतावाद समाज में नैतिक मूल्यों के ह्रास का कारण तो बनता ही है, साथ ही वह राष्ट्र के विखण्डन जैसे भयावह परिणाम का कारण भी बनता है। इस सन्दर्भ में हम सोवियत रूस का उदाहरण दे सकते हैं। संसार के सर्वाधिक विशाल आकार वाले और सर्वसामर्थ्यशाली देश रूस ने

कम्युनिज्म (साम्यवाद) की नास्तिक विचारधारा को अपनाने के कारण धर्म की अवहेलना की। धर्म की अवहेलना से धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य के भेद की भावना जनता में नष्ट होती गई। उसके परिणामस्वरूप देश में भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद, सुविधाभोगिता और अकर्मण्यता पनपी। उसके कारण आर्थिक संकट और राष्ट्रीय भावना के प्रति उदासीनता उत्पन्न हुई, जिसका दुष्परिणाम यह हुआ कि रूस पन्द्रह देशों के टुकड़ों में बिखर गया। भविष्य का यदि चिन्तन करते हैं तो यही आशंका हमें भारत के भविष्य पर भी मंडराती प्रतीत हो रही है। यदि इस संभावित परिस्थिति से बचना है तो देश में समान आचार संहिता लागू करनी होगी।

धर्मनिरपेक्षतावाद के वायवी प्रभाव, अपितु यह कहना चाहिये कि उसकी दुरभिसन्धि में आकर भारत ने विभाजन के समय स्वयं को धार्मिक दृष्टि से तटस्थ राष्ट्र घोषित किया और उसके पश्चात् धर्मनिरपेक्ष/पन्थनिरपेक्ष घोषित करके अपनी संस्कृति, सभ्यता, परम्परा, धर्म, राष्ट्रत्व के भावी पतन का मार्ग प्रशस्त कर लिया। इस देश का शासन भूल गया कि इसका विभाजन धार्मिक आधार पर ही हुआ है। विभाजित भूखण्ड पाकिस्तान ने धार्मिक शासन स्वीकार करके अपने धर्म, संस्कृति, सभ्यता, परम्पराओं को सुरक्षित कर लिया और भारत ने उनके तथा अन्य सम्प्रदायों के लिए फिर से अपना मैदान खाली छोड़ दिया। शेष बचे भारत के कितने ही भूभाग का आज फिर से इस्लामीकरण और ईसाईकरण हो चुका है और यह प्रक्रिया तीव्र गति से जारी है। भारत की राजनीति ने इस प्रक्रिया को फलने-फूलने के लिए असमान आचार संहिता, तुष्टीकरण, अल्पसंख्यकवाद, पक्षपातपूर्ण योजनाओं के माध्यम से खूब अवसर प्रदान किये हैं। यह सब धर्मनिरपेक्ष संविधान और नीतियों की आड़ में हो रहा है। दुस्साहस इतना बढ़ गया है कि इस देश के नागरिक होते हुए भी कुछ तत्त्व राष्ट्रविरोधी ताकतों का सहयोग कर रहे हैं, देश-विरोधी नारे लगा रहे हैं, धर्म के आधार पर पृथक् देश की माँग कर रहे हैं, खुलकर अलगाववादियों का प्रोत्साहन एवं प्रशंसा कर रहे हैं। क्या किसी धर्मसापेक्ष देश में कोई ऐसा करने का साहस कर सकता है? यह धर्मनिरपेक्षता और लोकतन्त्र का दुरुपयोग है। इसी कारण समीक्षक भारत की धर्मनिरपेक्ष नीति को छद्म धर्मनिरपेक्ष नीति कहकर आलोचना करते हैं।

धर्मनिरपेक्षतावाद की शासन-प्रणाली धर्मसापेक्ष समुदायों और देशों को अपने यहाँ घुसपैठ करने का सुविधापूर्ण मार्ग और अवसर उपलब्ध कराती है। धर्मसापेक्ष देश स्वयं को धर्म-विशेष पर आधारित घोषित करके अपने धर्म, संस्कृति, सभ्यता शासन की सुरक्षा सुनिश्चित करके निश्चिन्त हो जाते हैं। फिर उनकी विस्तारवादी नीति धर्मनिरपेक्ष देशों को अपना लक्ष्य बनाती है। धर्मनिरपेक्ष देशों के बहुसंख्यक जन एक ओर कानूनी सुरक्षा से वंचित रहते हैं और दूसरी ओर उन्हें अपने धर्म, संस्कृति, सभ्यता, परम्पराओं की रक्षा के लिए वैयक्तिक संघर्षों में निरत रहना पड़ता है। कट्टर धर्मसापेक्ष समुदाय या देश विस्तार पाते-पाते एक दिन उनके धर्म, संस्कृति, सभ्यता, परम्परा यहाँ तक कि वहाँ के शासन को भी अपनी पकड़ में ले लेते हैं। आज के समय आंशिक रूप से भारत और कुछ भुक्तभोगी यूरोपीय और एशिया के देश इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। ये वे देश हैं जिन्होंने धर्मनिरपेक्षतावादी नीति की अति उदारता और मानवता की भावना में आकर इस्लामी सम्प्रदाय-विशेष के लोगों को अपने यहाँ शरण एवं सुविधा प्रदान की थी। आनुपातिक रूप से जन्मदर का विस्तार करके आज वही लोग उन देशों के लिए न केवल प्रशासनिक समस्या बने गये हैं, अपितु वहाँ के शासक होने के दावेदार अधिकारी बन गये हैं। ऐसे देशों के रूप में फ्रांस, जर्मनी, स्विटजरलैंड, इंग्लैंड, चेचन्या (रूस), बोस्निया, अल्बानिया, लेबनान, यमन, जोर्डन आदि का नाम उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। ताजा उदाहरण गांबिया देश (अफ्रीका) का उद्धृत किया जा सकता है जहाँ मुसलमान और ईसाई लगभग समान अनुपात में रह रहे थे। मुसलमानों की सामान्य जनसंख्या बढ़ते ही वहाँ के मुसलमान राष्ट्रपति ने उस देश को 'इस्लामी राष्ट्र' घोषित कर दिया। विश्व में यह ७५ वाँ इस्लामी राष्ट्र है। भारत में ईसाई बहुल होने से नागालैण्ड आदि पूर्वोत्तर राज्यों की और काश्मीर तथा मध्यक्षेत्रीय अनेक भूभागों की लगभग ऐसी ही परिस्थिति हो चुकी है। धर्मनिरपेक्षतावादी विचारधारा अति आदर्श की खुशफहमी में जी रहे कुछ बुद्धिजीवीमन्य लोगों की विचारधारा है, जिन पर अन्ततः किसी कट्टर धर्मसापेक्ष समुदाय द्वारा प्राप्त कष्टों का शिकार बनने की आशंका मंडराती रहेगी।

डॉ. सुरेन्द्र कुमार

मृत्यु सूक्त-२७

प्रवचनकर्त्ता- डॉ. धर्मवीर

लेखिका - सुयशा आर्य

परोपकारिणी सभा के पूर्वप्रधान डॉ. धर्मवीर जी के वेद-विज्ञान के अन्तर्गत प्रसारित व्याख्यानों की जनोपयोगिता को ध्यान में रखकर 'परोपकारी' में प्रकाशित किया जा रहा है। व्याख्यानों के लेखन का कार्य उनकी ज्येष्ठ पुत्री सुयशा आर्य कर रही हैं। सम्पादक

इमे जीवा विमृतैराववृत्रन्नभूद्भद्रा देवहूतिर्नो अद्य।
प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः।।

हम ऋग्वेद के दसवें मंडल के १८ वें सूक्त (मृत्यु सूक्त) की चर्चा कर रहे हैं। उपरोक्त मन्त्र में हमने इसके पहले चरण की चर्चा की थी। पहला चरण था '**इमे जीवा विमृतैराववृत्रन्**- अर्थात् हम जो जीव हैं, जिन्होंने उस मृत्यु को अपने पास से हटा दिया है, परे कर दिया है। ऐसा करने से क्या हुआ- **अभूद्भद्रा देवहूतिर्नो अद्य**- '**हूति**' कहते हैं पुकार को, आह्वान को, प्रार्थना को और **देवहूति** का अर्थ होता है, देवों से की गयी प्रार्थना, परमेश्वर से की गयी प्रार्थना। वो कहता है कि हमारी जो पुकार, हमारी जो परमेश्वर से प्रार्थना, **भद्रा अभूत्-भद्र** हो गयी है।

भद्र सामान्य रूप से अच्छे को कहते हैं, व्याकरण की दृष्टि से जो कल्याण या सुख है उसको भद्र कहते हैं। भद्र शब्द वेद में बहुत प्रयोग में आता है। इसका व्याख्यान करते हुए **लाट्यायन** में कहा गया है **भद्रं पुरुषस्य वित्तम्।** भद्र किसे कहते हैं कि जो मनुष्य का धन है उसे भद्र कहते हैं। **भद्रा गृहम्**, जो घर है उसको भी भद्र कहते हैं। **भद्राः प्रजाः** जो सन्तान है उसको भी भद्र कहते हैं। **पशवो भद्रम्**- जो हमारी पशु संपत्ति है उसको भी भद्र कहते हैं। हमारी सारी संपत्ति भद्र है। तो **अभूत् भद्रा देवहूतिर्नो अद्य**- आज हमारी पुकार सार्थक हो गई है। हमारी प्रार्थना सुन ली गयी है।

हम जब अपनी प्रार्थना को समझते हैं कि पूरी हो गयी है तो स्वाभाविक रूप से हमारे अन्दर प्रसन्नता होती है। मनुष्य जब किसी चीज़ को पा जाता है, उसको हम कहते हैं सफल होना, फल की प्राप्ति होना। आप जानते हैं कि कर्म और कर्मफल दो शब्द हैं, जिसमें फल कर्म के बाद आता है। इसका क्रम भी ऐसा ही है क्योंकि फल होता ही कर्म के बाद है। परिणाम को फल कहते हैं तो प्रक्रिया होने के बाद ही तो फल मिलेगा। कोई चलेगा तभी तो पहुँचेगा। चलना प्रक्रिया है और पहुँचना फल है, चलना कर्म है और पहुँचना कर्मफल है। तो हमारे कर्म का फल कर्म के बाद मिलता है और हमारी प्रार्थना सफल हो जाती है।

हमने परमेश्वर से जो पुकार की थी उसमें प्रार्थना को हम केवल माँगना समझते हैं, जबकि ऐसा नहीं है। प्रार्थना इच्छा से लेकर पहुँचने तक की प्रक्रिया है, वो किसी भी रूप में होती है। मैं सामने वाले से बोलकर कहता हूँ, उसे प्रार्थना कहता हूँ, लेकिन दूर वाले से मैं लिखकर कहता हूँ उसे भी तो मैं प्रार्थना-पत्र कहता हूँ और जब मैं परमेश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि परीक्षा में भगवान् मुझे पास कर देना, तो मैं पढ़ता भी हूँ, परीक्षा भी देता हूँ तब भी तो मैं प्रार्थना ही करता हूँ। पढ़ना और परीक्षा देना मेरी प्रार्थना का ही हिस्सा है, भाग है। मतलब केवल मैं कहता रहूँ और मैं न पढ़ूँ और न ही परीक्षा दूँ तो मुझे फल कैसे मिलेगा? मेरी प्रार्थना सफल कैसे होगी? इसलिए प्रार्थना का अर्थ केवल शाब्दिक नहीं है। एक किसान भगवान से प्रार्थना करता है कि भगवान् इस बार मेरे खेत में अच्छी फसल हो, मेरे घर में बहुत धान्य आए, तो क्या यह कहने मात्र से भगवान् देता है? नहीं। वो किसान खेती करता है, फसल की रक्षा करता है, खाद-पानी देता है, समय आने पर उसको काटता है, तब जाकर वह धान्य प्राप्त करता है। जब उसे धान्य मिल जाता है, तब उसकी प्रार्थना पूरी होती है, प्रार्थना सफल होती है। तो प्रार्थना कर्म है और फल उसकी प्राप्ति

है। इस तरह से प्रार्थना का अर्थ केवल कहना नहीं है बल्कि कर्म करना है।

इसको समझने का एक और भी तरीका है। हम वेद के विषय वर्गीकरण करते हैं तो ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद का क्रमशः विषय है-ज्ञान, कर्म, उपासना और विज्ञान। यहाँ ज्ञान के बाद कर्म है और उसके बाद उपासना है। इसी बात को थोड़े से अन्तर के साथ हम स्तुति, प्रार्थना, उपासना में भी देख सकते हैं। वहाँ पर स्तुति का अर्थ ज्ञान और प्रार्थना का अर्थ कर्म है। उपासना दोनों जगह समान है। इस तरह से थोड़े से शब्द भेद के साथ उसी बात को कह रहा है।

हम प्रार्थना जो भी करें, वो प्रार्थना हमारे कार्य को सफल बनाने का साधन है। यदि हम परमेश्वर से कह रहे हैं कि परमेश्वर तू हमें मृत्यु से बचा तो परमेश्वर, कहने मात्र से मृत्यु से नहीं बचाता। मेरी प्रार्थना मेरे कर्म का रूप है, मेरी प्रार्थना कर्म के रूप में मुझे दिखाई देती है और वो कर्म फल के रूप में मुझे उससे बचाते हैं। तब मैं कह सकता हूँ- **अभूद् भद्रा देवहूतिर्नो अद्य।** मनुष्य पुकारता कब है? मनुष्य प्रार्थना कब करता है? जब वह अपने प्रयत्न कर चुकता है। **ऋषि दयानन्द कहते हैं कि प्रार्थना तभी सफल होती है जब वह पूर्ण पुरुषार्थ के बाद की जाए। पुरुषार्थ के बिना की गई प्रार्थना सफल नहीं होती, सुनी नहीं जाती।**

जो प्रार्थना सुनने वाला है और जो करने वाला है, उन दोनों का एक मनोवैज्ञानिक संबन्ध है। आप प्रार्थना करते कब हैं? आपको पता है कि आप खेती करेंगे, आपके पास कुआँ है, आपके पास बिजली है आपके पास यन्त्र, उपकरण हैं, आपके पास जानकारी है तब आप प्रार्थना में नहीं जाते। आप निरन्तर अपना कर्म करते रहते हैं और आपको भरोसा रहता है कि यह काम होगा। प्रार्थना का अवसर तब आता है जब आपके साधन कम पड़ गए, आपके कुएँ में पानी नहीं रहा, जब वर्षा होनी चाहिए थी तब नहीं हुई। अब आपका सामर्थ्य नहीं है कि आप वर्षा करा दें। आपके प्रयत्नों से आपके कुएं में पानी आया नहीं तो अब आप क्या करेंगे? निश्चित रूप से आप जो कर सकते थे आप कर चुके। कर चुकने के बाद यदि सफलता नहीं मिली, फल की प्राप्ति नहीं हुई तब आप जो काम करते हैं उसको शब्दों में 'प्रार्थना' कहते हैं। आप आकाश की ओर देखते हैं और कहते हैं-भगवान् वर्षा कर दो। यह जो प्रार्थना है, यह आह्वान '**देवहूति**', है।

मेरा कार्य मैं कर चुका, किन्तु मेरे कार्य से मुझे प्राप्ति नहीं हुई, मेरे कार्य से पूर्णता नहीं आयी, मैं अभी आधे-अधूरे में खड़ा हूँ। अब यहाँ से आगे मुझे आप ही ले जा सकते हैं, आप ही पहुँचा सकते हैं। तब मैं बुला रहा हूँ। जब मैं रास्ते में होता हूँ, गिरने की संभावना होती है या गिर गया होता हूँ, तब मैं पुकार रहा होता हूँ। मुझे कोई मनुष्य दिखता है तो मैं मनुष्य को पुकारता हूँ। वह मनुष्य आता है और मुझे उठा लेता है, मेरी सहायता कर देता है लेकिन मुझे जब कोई मनुष्य भी दिखाई नहीं देता, उस स्थिति में मैं परमेश्वर को पुकारता हूँ।

जब कोई मनुष्य रोगी होता है, तो वह पहले अपने स्थानीय प्रयत्न करता है, छोटे प्रयत्न करता है, फिर बड़े प्रयत्न करता है, बड़ी जगहों पर जाता है, लेकिन अनिवार्य नहीं है कि सफलता मिल ही जाए। तब चिकित्सक कहता है, अब मनुष्य नहीं कर सकता, अब तो कोई चमत्कार ही हो सकता है, कोई भगवान् की कृपा, आशीर्वाद ही हो सकता है। हमारे जानने की, हमारे करने की जो सीमा थी, वो तो हम कर चुके। ऐसी स्थिति में हमारे यहाँ एक पंक्ति है- **औषधं जाह्नवी तोऽयं वैद्यो नारायणो हरिः।** अब तो घर ले जाओ, सेवा करो, गंगाजल पिलाओ, भगवान् से प्रार्थना करो। **औषधं जाह्नवी तोऽयम्**- अब एक ही चीज बची है, गंगाजल की औषध और **वैद्यो नारायणो हरिः** अर्थात् अब भगवान् वैद्य है।

हमारी जो पुकार की दशा है, जो पुकार की परिस्थिति है वह बिना पुरुषार्थ पूरा हुए बनती ही नहीं है। जो बिना पुरुषार्थ किए पुकार रहा है उसके अन्दर पुकार का भाव ही नहीं आता। उसके अन्दर वो करुणा, वो कातरता, वो विवशता, वो मजबूरी आती ही नहीं है। मनुष्य जब असहाय हो जाता है, विवश हो जाता है, असमर्थ हो जाता है, अपने सामर्थ्य को पराजय की श्रेणी में डाल देता है, तब उसके अन्दर से जो आवाज आती है, उसके हृदय से जो पुकार उठती है वो पुकार **देवहूति** है, देवताओं के लिए आह्वान

है, देवताओं के लिए बुलाना है। उस परिस्थिति में जब हमको सफलता मिलती है तो वह सफलता कैसी होती है? कहते हैं भद्र होती है, हमारा भला करने वाली होती है, हमारी इच्छाओं को पूर्ण करने वाली होती है। हमारे दुःख, कष्ट, दारिद्र्य को दूर करने वाली होती है।

प्रार्थना बहुत मनोवैज्ञानिक, स्वाभाविक और एक परिस्थिति विशेष को बताने वाला शब्द है और उस प्रार्थना को यहाँ **देवहूति** कहा है, देवताओं का आह्वान कहा है, पुकार कहा है। **भद्रा अभूत्** अर्थात् वह भद्र हो गई। हमारी पुकार सफलता तक पहुँच गयी और तभी उसने कहा **इमे जीवा विमृतैराववृत्रन्नभूद्भद्रा देवहूतिर्नो अद्य** अर्थात् यह जो हमने मृत्यु पर विजय पायी है, या सफलता पायी है, यह कैसे पायी? तो कहता है- **देवहूति** के द्वारा। भगवान के आह्वान से, भगवान की पुकार से, भगवान की प्रार्थना से।

हमारे पास कोई ऐसा साधन ऐसा उपाय है, परमेश्वर का बताया हुआ जिससे हम मृत्यु पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। मृत्यु पर विजय प्राप्त करने का ही इसमें निर्देश दिया गया है और मृत्यु पर विजय प्राप्त करने के लिए परमेश्वर की सहायता, परमेश्वर की कृपा अनिवार्य है। उस परमेश्वर की कृपा को ही इस मन्त्र में समझाया है। इसमें कृपा भी है और कृपा का फल भी। इमे **जीवा विमृतैराववृत्रन्**=हम मृत्यु से बच गए। **अभूद् भद्रा देवहूतिर्नो अद्य**=आज हमारा देवताओं को पुकारना सार्थक हो गया, यह इसका परिणाम है।

लेखकों से निवेदन

- लेखक कृपया अपने मौलिक व अप्रकाशित लेख ही भेजें।
- लेखक अपना पूरा पता व चल-दूरभाष संख्या लेख के साथ अवश्य लिखें।
- परोपकारिणी सभा द्वारा रचनाओं के लिए किसी प्रकार का भुगतान नहीं किया जाता है।
- अपनी रचना की एक प्रति कृपया अपने पास रखकर भेजें, क्योंकि अस्वीकृत रचनायें डाक द्वारा लौटाई नहीं जाती हैं।
- रचना के प्रकाशन में छः माह या अधिक समय भी लग सकता है, अतः कृपया तब तक रचना को अन्यत्र न भेजें।
- स्वीकृत रचना परोपकारी के किसी आगामी अङ्क में देखी जा सकती है। **-संपादक**

गुरुकुल के लिये प्रवेश-सूचना

परोपकारिणी सभा, अजमेर द्वारा संचालित महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान-अजमेर में वैदिक धर्म एवं आर्यसमाज के उपदेशक तैयार करने हेतु उपदेशक कक्षा में प्रवेश प्रारम्भ हैं।

प्रवेशार्थी की न्यूनतम आयु १४ वर्ष तथा कक्षा आठ या उससे अधिक उत्तीर्ण हो। आर्ष-पद्धति से व्याकरण, दर्शन तथा महर्षि निर्दिष्ट पाठ्यक्रम के अध्यापन की व्यवस्था है।

गुरुकुल में अध्यापन, भोजन एवं आवास की निःशुल्क व्यवस्था है।

प्रवेश के इच्छुक अभ्यर्थी सम्पर्क करें-

आचार्य विद्यादेव, आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान, पुष्कर रोड, अजमेर।

दूरभाष- ९८७९५८७७५६

भूल-सुधार

प्रिय पाठक! परोपकारी मार्च प्रथम २०१९ के पृष्ठ संख्या १४ पर महाराणा गजसिंह वर्मा का जन्म दिनांक भूलवश १९८७ वि. छप गया है, जो कि १८८७ वि. होना चाहिये।

पृष्ठ १९ पर महाराणा सज्जनसिंह का कार्यकाल भी असावधानीवश १९८३-१८८४ छप गया है जो कि १८८३-१८८४ है। आपको हुई असुविधा के लिये खेद है।

कुछ तड़प-कुछ झड़प

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

लौह पुरुष स्वामी स्वतन्त्रानन्द आ रहा है- आर्यसमाज में पं. लेखराम जी लिखित ऋषि जीवन के पश्चात् पहला जीवन चरित्र, जिसके लेखक ने किसी सभा, संस्था अथवा व्यक्ति के सहयोग व आदेश के बिना उत्तर से सुदूर दक्षिण तक ग्रामों में, नगरों में और कस्बों में जाकर किसी आर्य महापुरुष के जीवन की सामग्री की खोज में लम्बी-लम्बी-यात्रायें कीं तो वह यही ग्रन्थ है। हमने इस ग्रन्थ रत्न के लेखन के लिये ६५ वर्ष लगा दिये हैं। इसका तीसरा संस्करण प्रकाशन अधीन है। देवनगर के आर्यवीरों के उत्साह के बलिहारी जो इतने बड़े ग्रन्थ के प्रकाशन का जोखिम वे उठा रहे हैं। यह ग्रन्थ तो 'स्वामी श्रद्धानन्द जीवन यात्रा से' भी बड़ा होगा।

आर्यसमाज के तथा देश के गुमनाम इतिहास पुरुष पं. रुचिराम जी के इसमें 'सात चित्र' पहली बार देशवासी देखेंगे। इसके लिये श्री महेन्द्रसिंह आर्य, अनिल आर्य तथा श्रीयुत लक्ष्मण जी 'जिज्ञासु' का देश ऋणी रहेगा। सम्भवत: जिज्ञासु तथा श्रीमती जिज्ञासु के अतिरिक्त देशभर में अब कोई पंडित जी का फोटो भी न पहचान सकता है।

पंजाब से तो किसी ने भी इस ग्रन्थ में कोई रुचि ली ही नहीं। स्वामी श्रद्धानन्द जी व स्वामी स्वतन्त्रानन्द का इतिहास आर्यसमाज का गौरवपूर्ण स्वर्णिम् इतिहास है। देशभर के आर्यसमाज के रक्त-रंजित इतिहास की समप्राण जानकारी पाकर आबाल-वृद्ध फड़क उठेंगे। दक्षिणी हरियाणा में प्यारे ऋषि जी ने ग्यारह व्याख्यान प्रवचन दिये। सारे आर्यजगत् में एक भी ऐसा वक्ता न मिलेगा कि जो दक्षिणी हरियाणा के आर्यसमाज के प्रेरणाप्रद इतिहास पर ग्यारह तो क्या दस व्याख्यान भी दे सके।

शूरता की शान महान् स्वतन्त्रानन्द जी के इस जीवन-चरित्र पर उदीयमान वक्ता भी दो सप्ताह तक स्फूर्तिदायक प्रेरक व्याख्यान देकर मृतको में जीवन संचार कर सकते हैं। हमने इस ग्रन्थ में दक्षिणी हरियाणा के आर्यों का स्वर्णिम इतिहास भी खोद-खोद कर खोज-खोज कर दिया है।

अच्छा हुआ जी किसी ने न लिखा- जब यह ग्रन्थ वीर संन्यासी के रूप में पहली बार छपा था तो लेखक ने पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी से उनकी कुटिया में कहा था, "महाराज! बड़े-बड़े विद्वानों को यह कार्य सौंपा गया। उन्होंने ने कुछ भी न लिखा। मेरे कार्य में दोष तो कई होंगे, परन्तु मैंने कन्याकुमारी तक यात्रायें करके सामग्री तो पर्याप्त खोजकर दे दी है।"

शान्त, गम्भीर संन्यासी ने कहा, "अच्छा हुआ किसी ने कुछ भी न लिखा। वे लोग घर से बाहर न निकलते। आप घूम-घूम कर स्वामी जी के भक्तों, शिष्यों, प्रेमियों के पास दूर-दूर तक जाकर इतनी सामग्री खोजकर लाये। यह उन लोगों के बस की बात नहीं थी। आपकी दृष्टि एक इतिहास-प्रेमी की थी। यह ग्रन्थ इतना बढ़िया बन गया।"

एक इतिहास लेखक ने कभी कहा था, "लेखक ने बड़ी दक्षता से सूझ से स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी की ओट में आर्यसमाज का एक शताब्दी का इतिहास नये ढंग से लिख डाला है।"

इस दुबले-पतले अल्पज्ञ ग्रामीण सेवक की इस भेंट पर ऋषि के दीवाने अवश्य इतरायेंगे। सम्भव है कुछ हमें कोसें भी।

पं. लेखराम जी की धर्म-धुन- पं. लेखराम जी की कोटि का जागरूक और धर्मधुन का दूसरा मिशनरी आर्यसमाज में कौन हुआ? यह कहना अति कठिन है। आर्यसमाज ने आर्य धर्म की रक्षा व प्रचार-प्रसार के लिए अनेक समर्पित, तपस्वी, दिलजले विद्वान् उत्पन्न किये। पं. लेखराम सबके प्रेरणा स्रोत्र व आदर्श रहे हैं। उनकी एक विशेषता यह थी कि वे वैदिक धर्म के मण्डन व महत्ता पर नये-नये लेख, पुस्तकें लिखने में दिन-रात लगे रहते थे और अपनी नई-नई खोज से श्रोताओं को लाभान्वित करने के लिये आकर्षक शीर्षक देकर उत्सवों पर व्याख्यान दिया करते थे यथा **अमृत का स्त्रोत, सच्चाई की चट्टान** आदि।

वैदिक धर्म पर कहीं भी कोई भी वार-प्रहार करते हुये कुछ लिखे तो वे झट से उसके उत्तर-प्रत्युत्तर के लिये कुछ लिख देते। संगठन से वे यही आशा अभिलाषा करते थे कि प्रत्येक विरोधी का झट से उत्तर छप जाना चाहिये। आर्यसमाज द्वारा इस काम में विलम्ब व प्रमाद वे सहन नहीं कर सकते थे। इस विषय में हमने अपने ग्रन्थ 'रक्तसाक्षी' में कई झकझोर देने वाली घटनायें रक्तसाक्षी पं. लेखराम ग्रन्थ में दी हैं। वे बड़े से बड़े नेता से इस विषय में फुर्ती न दिखाने पर रुष्ट हो जाते थे। उनके प्रचण्ड मन्यु का सामना करना महात्मा मुंशीराम जी

तथा रामविलास जी शारदा अजमेर का ही काम था।

अमृतसर में आर्यजनता ने जब 'तकजीबे बुराहीने अहमदिया' के प्रकाशन में उत्साह न दिखाया तो वे वहीं भरी सभा में पाण्डुलिपि फेंक कर एक ओर हो गये। समाज के विद्वान् नेता पं. धर्मचन्द जी ने बाद में कहा, "पण्डित जी! मैं व्यवस्था करूँगा। आप चिन्ता न करिये, तो झट से भाव-विभोर होकर बोले, अच्छा! मैं दोबारा विरोधी का उत्तर लिख देता हूँ।"

पं. धर्मचन्द जी ने कहा, "चिन्ता मत करें आपकी पाण्डुलिपि मैंने वहीं सम्भाल कर सुरक्षित रख दी थी।" इससे पण्डित जी गदगद् हो गये।

एक बार विरोधियों का झटपट उत्तर न देने के लिये महात्मा मुंशीराम जी से बिगड़ गये। महात्मा जी उनकी इस प्रकार की तड़प के लिये उनके परम प्रशंसक थे। उन्हें शान्त करने के लिये जो कहना था कहा।

एक पौराणिक कायस्थ ने पौराणिकों की ओर से महर्षि की निन्दा में एक पुस्तक लिखी। कुटिल लेखक ने जनता को भ्रमित करने के लिये उसका नाम रखा 'स्वामी दयानन्द की महिमा' या कुछ ऐसा ही नाम था। अजमेर में इसका उत्तर लिखकर पं. जी इसके प्रकाशन के लिये तड़पने लगे। श्री राम विलास शारदा से परोपकारिणी सभा में बातचीत की। शारदा जी के उत्तर को सुनकर निराश होकर दु:खी मन से उन्होंने पाण्डुलिपि वहीं फेंक दी। शारदा जी को रोष में बहुत कुछ कह गये। मन में तो शारदा जी के लिये सम्मान था। उनके घर पहुँच गये। वहाँ उत्तर देने की बात शारदा जी ने चला दी तो झूम उठे। कहा, "मैं उत्तर फिर लिख देता हूँ।" शारदा जी ने कहा, वही पाण्डुलिपि मैंने तत्काल उठाकर सुरक्षित कर ली थी। इसे छपवाने का प्रबन्ध हो जावेगा।

कुछ तड़प-कुछ झड़प की समाज को देन- देश-विदेश से परोपकारी के पाठक 'कुछ तड़प-कुछ झड़प' स्तम्भ को सुरुचि से पढ़ते हैं। चलभाष पर नित्य प्रति कुछ स्वाध्याय प्रेमी सम्पर्क करके अपनी प्रतिक्रिया भी देते हैं और आर्य सिद्धान्तों के विषय में अपनी शङ्काओं के उत्तर पूछते रहते हैं। पुराने आर्य साहित्य, इतिहास तथा आर्यसमाज पर विरोधियों के नित्य होने वाले आक्रमणों के बारे में जानकारी देने की माँग करते रहते हैं। तड़प-झंड़प के लिये नये-नये पठनीय विषय भी देते हैं। सच तो यह है कि तड़प-झड़प के लिये नये-नये विषय देने वाले पाठकों को ही इसकी लोकप्रियता व उपयोगिता का बहुत सा श्रेय प्राप्त है।

आर्यसमाज के नये-नये कर्मठ, सुयोग्य व मेधावी दीवाने आर्यवीर जितने 'तड़प-झड़प' स्तम्भ ने दिये हैं उतने तो किसी सभा संस्था ने सम्भवत: कम ही खींचे हों। हरियाणा में टोली बनाकर प्रचार के लिये, धर्म रक्षा के लिये बिन बुलाये निकलने वाली श्री अभय जी, अमितजी, विकास जी, अंकुर जी का संगठन पं. लेखराम, महात्मा मुंशीराम, पं. कृपाराम, मास्टर आत्माराम युग की याद दिला रहा है। देवनगर के आर्यवीर अनिल को देखकर डॉ. धर्मवीर जी ने भाव विभोर होकर जो टिप्पणी की वह उनकी दूरदृष्टि का प्रमाण सिद्ध हुई। आज देवनगर से दूसरा सदृढ़ गढ़ खोजना कठिन है। समालखा का ऐतिहासिक समाज मर चुका था। मन्दिर भी...अभय जी की मण्डली ने वहाँ मन्दिर के खण्डहर भी बचा लिये और नवनिर्माण के लिये लाखों रुपये का दान भी एकत्र कर लिया। रामगढ़ का आर्य परिवार केवलराम एण्ड सन्स आर्यसमाज की जो सेवा कर रहा है यह तड़प-झड़प स्तम्भ का ही चमत्कार है। शूरता की शान श्रद्धानन्द के जन्म स्थान पर वैदिक पाताका फिर से फहराने और धर्म-प्रचार करके आर्यसमाज का सिर ऊँचा करने वाले सब युवक तड़प-झड़प से प्रेरणा पाकर घरों से निकलते हैं। उनका तो नारा ही यही है-

'हम मस्तों में आन मिले कोई हिम्मत वाला रे'

लेखक के भागदौड़ के दिन तो अब गये, परन्तु आठ से दस घण्टे प्रतिदिन ऋषि मिशन के लिये कार्यरत रहना हमारा स्वभाव है। दूर-दूर से दीवाने मिलने आते हैं। आर्यसमाज को रोग लग गया है। गुरुडम के अड्डे बढ़ते जा रहे हैं। ये लोग किसी को आर्यसमाज से नहीं जोड़ते, अपने आश्रमों, संस्थाओं से जोड़ते हैं। अपने चेले बनाने की चिन्ता में महात्मा लगे हैं।

बेगूसराय के लोकप्रिय प्रतिष्ठित आर्य डॉक्टर श्री अशोक कुमार जी गुप्त आर्यसमाज के तप:पूत हैं। आपने भावभरित हृदय से हमें प्रेरणा दी कि पत्रकार शिरोमणि महाशय कृष्ण जी के अलभ्य लेखों को सम्पादित करके एक ग्रन्थ प्रकाशित करवायें। क्या-क्या कार्य किया जावे? तथापि डॉ. अशोक जी को कह दिया है कि जुलाई से यह कार्य आरम्भ हो जावेगा। देश विभाजन से पहले के महाशय जी के ऐतिहासिक लेखों का ४००-५०० पृष्ठों का **'कृष्ण का सुदर्शन चक्र'** माता आर्यसमाज के युवा पात्रों के लिये तैयार करने का कार्य आरम्भ हो जावेगा। कोई सभा संस्था सन् १९४७ से पहले के ऐसे दुर्लभ लेखों का संग्रह करके दिखावे तो हम भी जानें। इसके पाठक ग्रन्थ पढ़कर फड़क उठेंगे।

पाठकों के विचार

केन्द्रीय विद्यालयों में परमात्मा की प्रार्थना पर रोक लगाने की माँग अनुचित है!

मध्यप्रदेश के वकील विनायक शाह द्वारा सुप्रीम कोर्ट में याचिका दाखिल करके केन्द्रीय विद्यालयों में होने वाली प्रार्थना **दयाकर दान विद्या का हमें परमात्मा देना** और ज्ञान-मार्ग, प्रकाश-मार्ग पर चलने हेतु **असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय** बोलने पर रोक लगाने की माँग की गई है। विनायक शाह ने इसे हिन्दू धर्म को बढ़ावा देना एवं बच्चों की वैज्ञानिक सोच में बाधक बतलाया है। उपरोक्त सम्बन्ध में कुछ प्रश्न पैदा होते हैं-

१. क्या धर्म अनेक होते हैं? सच्चाई यह है कि धर्म एक होता है। मानव का धर्म है मानवता। हिन्दू धर्म, मुस्लिम धर्म, कहना गलत है, इसे मत या पन्थ कहना उचित है जैसे हिन्दू मत, ईसाई मत, मुस्लिम मत आदि।

२. क्या परमात्मा, खुदा या गॉड अलग-अलग सत्ता हैं? सच्चाई यह है कि संसार का मालिक एक है, विभिन्न मत वालों ने उसे अलग-अलग नाम से सम्बोधित किया है। कोई परमात्मा, कोई खुदा, कोई गॉड आदि।

३. किसी प्रार्थना या विचार का इस आधार पर विरोध करना कि यह एक विशेष समुदाय के धर्मग्रन्थ से लिया गया है या एक विशेष भाषा में बोला गया है, उचित नहीं है। महत्त्वपूर्ण यह है कि प्रार्थना का भावार्थ क्या है। क्या प्रार्थना मानवता पर आधारित है? क्या प्रार्थना से बच्चों के हृदय में अच्छे विचार आते हैं?

४. क्या प्रार्थना में किसी मत, मजहब की निन्दा की गई है? अगर ऐसा नहीं है तो प्रार्थना का विरोध क्यों?

प्रार्थना का आंशिक स्वरूप

दयाकर दान विद्या का हमें परमात्मा देना
दया करना हमारी आत्मा में शुद्धता देना।
हमारा धर्म हो सेवा हमारे कर्म हो सेवा।
हमें आपस में मिलजुलकर प्रभु रहना सिखा देना...

क. प्रार्थना में कहा गया है हमें आपस में मिल-जुलकर रहना सिखा देना अर्थात् एकता की भावना पैदा करने की बात कही गई है।

ख. प्रार्थना में कहा गया है कि हमारा धर्म हो सेवा, हमारे कर्म हो सेवा अर्थात् त्याग और सेवा की भावना पैदा करने की बात कही गई है।

ग. प्रार्थना में कहा गया है कि **बहा दो प्रेम की गंगा, दिलों में प्रेम का सागर** अर्थात् आपसी प्रेम एवं सौहार्द की भावना पैदा करने की बात कही गई है।

इसी प्रकार वेद के विचार **असतो मा सद् गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय** (यजुर्वेद १९/९)

में अन्धकार से प्रकाश की ओर अज्ञान से ज्ञान की ओर चलने की बात कही गई है। क्या किसी भी मत या सम्प्रदाय वाला व्यक्ति प्रकाश-मार्ग या ज्ञान-मार्ग पर चलना नहीं चाहेगा?

किसी धर्मग्रन्थ का विचार अगर मानवता पर आधारित है तो उसे किसी भी मत मजहब वाले व्यक्ति को अपनाने में संकोच नहीं करना चाहिए।

उपरोक्त प्रार्थना के भाव एवं विचार वेद पर आधारित हैं, वेद संसार का सबसे प्राचीन एवं प्रथम धार्मिक ग्रन्थ है। वेद ने कहा '**मनुर्भव**' अर्थात् मनुष्य बनो। वेद ने यह नहीं कहा कि तुम मुसलमान बनो, हिन्दू बनो या ईसाई बनो।

भारतीय संस्कृति कहती है,

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया

अर्थात् सभी सुखी रहें, सभी निरोगी रहें यह नहीं कहती कि हिन्दू सुखी रहें, केवल मुसलमान या केवल ईसाई सुखी रहें।

यह व्यावहारिक अनुभव करने की बात है कि परम प्रार्थनीय परमात्मा की प्रार्थना से अनुशासन, मानसिक शान्ति, आत्मिक बल एवं बुद्धि का विकास होता है। याचिकाकर्त्ता द्वारा प्रार्थना को वैज्ञानिक सोच में बाधक मानना अत्यन्त हास्यास्पद लगता है।

याचिका दाखिलकर्त्ता एक अधिवक्ता है। अधिवक्तागण शिक्षित, सुतर्कपूर्ण विचारों एवं बुद्धिजीवी की श्रेणी में आते हैं। अतः याचिकाकर्त्ता विनायक शाह से भी हम इसी प्रकार की उम्मीद करते हैं।

आचार्य श्रुति भास्कर, सहारनपुर (उ.प्र.)

पुस्तक समीक्षा

पुस्तक का नाम - मानवता का उपासक
लेखिका - सौ. लीलावती राजेन्द्र जगदाळे, परभणी
प्रकाशक - संस्कार प्रकाशन, डी. १६, एम.आई.डी.सी., लातूर, महाराष्ट्र
मूल्य - १४०/- मात्र

इस पुस्तक की लेखिका हरिश्चन्द्र गुरुजी महाराष्ट्र निवासी (स्वामी श्रद्धानन्द) की भतीजी श्रीमती लीलावती जगदाळे हैं। हरिश्चन्द्र गुरुजी (श्रद्धानन्द जी) का जन्म महाराष्ट्र के औराद गाँव में हुआ था। उनके पूर्वज बड़े निर्भय एवं साहसी व्यक्ति थे। इनके घर के पास वृक्ष की खोह में एक व्याघ्र बैठा रहता था, जिससे पूरा गाँव भयभीत था, परन्तु इनकी दादी उसके सामने से बिना डरे निकल जातीं थीं।

इनके पिता रामराव जी भी धार्मिक प्रवृत्ति के थे। बचपन से ही इन्हें बच्चों के चरित्र-निर्माण की चिन्ता लगी रहती थी। विपन्न होते हुए भी इन्होंने महाराष्ट्र में गुरुकुल की स्थापना की तथा हाथ में ओ३म् ध्वज एवं बगल में सत्यार्थप्रकाश लेकर इन्होंने सैंकड़ों कोस की पद-यात्रा की तथा विरोध का सामना भी किया। कई कुओं का निर्माण करवाया। हैदराबाद आन्दोलन का इन्होंने भूमिगत रहकर संचालन किया तथा निजाम के कारिन्दे रजाकारों से डटकर लोहा लिया। हैदराबाद के आन्दोलन के तेजस्वी नेता पं. नरेन्द्र जी इनको कांग्रेस से जोड़ना चाहते थे, परन्तु कांग्रेस की दलगत नीतियों से इनका स्वभाव नहीं मिला। उन्होंने अन्तर्जातीय एवं विधवा विवाह निरन्तर करवाये। दिनांक २१/१२/१९९६ को श्री हरिश्चन्द्र गुरुजी संन्यासी हो गये तथा उन्होंने संन्यास आश्रम में अपना नाम स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती रखा। विधवा-विवाह के समर्थन में इनको धर्म के ठेकेदारों ने पुलिस से पिटवाया, परन्तु हरिश्चन्द्र गुरुजी (स्वामी श्रद्धानन्द) निर्भीक होकर स्त्री-जाति के उद्धार व छुआछूत के विरुद्ध निरन्तर लड़ते रहे। गोवा सत्याग्रह के अन्तर्गत भी पुलिस ने इनकी बर्बरतापूर्वक पिटाई की, हिन्दी आन्दोलन तथा गोवध के विरुद्ध स्वामीजी सदैव आन्दोलन करते रहे।

इनकी परोपकारी गतिविधियों एवं सादगीपूर्ण जीवन से गाँधीजी व सरदार पटेल बहुत प्रभावित थे और प्राय: इनसे मिलने के लिए इनके घर पधारा करते थे।

उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय आर्य सम्मेलनों के निरन्तर भाग लिया तथा महाराष्ट्र की आर्य प्रतिनिधि सभा का भी प्रतिनिधित्व किया। लेखिका ने स्वामी जी के विषय में काफी रोचक सामग्री प्रस्तुत की। पुस्तक आर्यों के लिए पठनीय एवं प्रेरणादायक है। मराठी भाषी होने के कारण लेखिका ने काफी शब्द मराठी भाषा के लिए है, परन्तु समझ में आ जाते हैं। महाराष्ट्र में बड़े 'ऊ' को छोटे 'उ' में लिखा जाता है, इस पुस्तक में भी ऐसे ही शब्दों का प्रयोग किया गया है। **- मोहनलाल तँवर, अजमेर**

सभी वर्ण के नर-नारियों में विद्या और धर्म का प्रचार आवश्यक

जो ब्राह्मण हैं वे ही केवल विद्याभ्यास करें और क्षत्रियादि न करें तो विद्या, धर्म, राज्य और धनादि की वृद्धि कभी नहीं हो सकती, क्योंकि ब्राह्मण तो केवल पढ़ने-पढ़ाने और क्षत्रियादि से जीविका को प्राप्त होके जीवन धारण कर सकते हैं। जीविका के आधीन और क्षत्रियादि के आज्ञादाता और यथावत् परीक्षक दण्डदाता न होने से ब्राह्मणादि सब वर्ण पाखण्ड ही में फंस जाते हैं और जब क्षत्रियादि विद्वान् होते हैं तब ब्राह्मण भी अधिक विद्याभ्यास और धर्मपथ में चलते हैं और उन क्षत्रियादि विद्वानों के सामने पाखण्ड, झूठा व्यवहार भी नहीं कर सकते और जब क्षत्रियादि अविद्वान् होते हैं तो वे जैसा अपने मन में आता है वैसा ही करते कराते हैं। इसलिए ब्राह्मण भी अपना कल्याण चाहैं तो क्षत्रियादि को वेदादि सत्यशास्त्र का अभ्यास अधिक प्रयत्न से करावें, क्योंकि क्षत्रियादि ही विद्या, धर्म, राज्य और लक्ष्मी की वृद्धि करनेहारे हैं, वे कभी भिक्षावृत्ति नहीं कर सकते, इसलिए वे विद्याव्यवहार में पक्षपाती भी नहीं हो सकते। और जब सब वर्णों में विद्या सुशिक्षा होती है तब कोई भी पाखण्ड रूप, अधर्म युक्त मिथ्या व्यवहार को नहीं चला सकता। इससे क्या सिद्ध हुआ कि क्षत्रियादि को नियम में चलाने वाले ब्राह्मण और संन्यासी तथा ब्राह्मण और संन्यासी को सुनियम में चलाने वाले क्षत्रियादि ही होते हैं। इसलिए सब वर्णों के स्त्री-पुरुषों में विद्या और धर्म का प्रचार अवश्य होना चाहिए। (स. प्र. स. ३)

आयुष्मान् भव-एक जीवन दर्शन

पं. रामनिवास 'गुणग्राहक'

जीवन के साथ मृत्यु का ऐसा अटूट व शाश्वत सम्बन्ध है कि एक के बिना दूसरे की कल्पना भी नहीं की जा सकती। गीता की भाषा में कहें तो-

"जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।"

अर्थात् जिसने जन्म लिया है, उसकी मृत्यु निश्चित है और जिसकी मृत्यु हुई है उसका दूसरा जन्म भी निश्चित है। इस तथ्य को भली भाँति जानते-मानते हुए भी मनुष्य जीवन भर मृत्यु के भय से त्रस्त रहता है। मृत्यु चाहे कितनी भी सुनिश्चित हो, जीवित रहने की चाह भी इतनी प्रबल है कि हम मृत्यु के पंजे से भी जीवित बचने-बचाने के लिए एड़ी से चोटी तक का बल लगा देते हैं। मनुष्य का वश चले तो इस ब्रह्माण्ड से मृत्यु शब्द को ही मिटा डाले। कुछ क्षणों में सम्पन्न हो जाने वाली मृत्यु नामक घटना हमारे कई दशकों तक फैले जीवन को पीड़ित प्रताड़ित करती रहती है। मैंने कुछ वर्ष पूर्व लिखा था-

**"जगत् में जीने की चाहत मृत्यु से डरती रहती है।
जिन्दगी की बेल यूँ प्रतिपल यहाँ मरती रहती है।।"**

आज हम सौ वर्ष की आयु को पूर्णायु मानकर चलते हैं। वेद में तो '**जीवेम शरदः शतम्**' के साथ ही '**भूयश्च शरदः शतात्**' की प्रार्थना है अर्थात् हम सौ वर्ष से भी अधिक जीयें। महाभाष्य के प्रणेता महर्षि पतञ्जलि लिखते हैं-

'किं पुनरद्यत्वे चिरं जीवति वर्ष शतं जीवति।'

(महा. नवाह्निक)

अर्थात् आजकल के लिए क्या कहें, कोई अधिक जीता है तो सौ वर्ष जीता है। वर्तमान में हमारी स्थिति कुछ अधिक दयनीय होती जा रही है। ४०-४२ वर्ष पार करते ही हमें नियमित चिकित्सकों की राय लेनी पड़ती है। ५०-६० के बाद की आयु जितनी भोजन पर निर्भर रहती है, उससे कहीं अधिक दवाइयों पर निर्भर रहने लगी है। ऐसी स्थिति में कई बार जब हमारे कुछ बन्धु वृद्ध-जनों का अभिवादन करते हैं और पुराने रंग-ढंग के वृद्धजन लम्बी आयु का आशीर्वाद देते हैं तो उनके मुख से निकलता है- अरे दादा जी क्या करेंगे लम्बी आयु का? दवाइयों के सहारे व परिवार वालों की उपेक्षा के चलते लम्बी आयु का आशीर्वाद आज अभिशाप बनकर रह गया है। कितने दुर्भाग्य की बात है कि परमात्मा का दिया हुआ अनमोल उपहार ये नर तन आज हमारे लिए भार बनकर रह गया है। सच पूछा जाए तो आज हमारा जीवन सच्चे सुख-शान्ति, आन्तरिक प्रसन्नता व आनन्द से कट सा गया है। हम पूरी तरह भूल गये हैं कि नरता व पशुता में कुछ अन्तर है भी या नहीं। संसार की हर वस्तु, संसार का हर प्राणी कुछ नियमों, सिद्धान्तों व मर्यादाओं का पूर्ववत् पालन कर रहा है। मनुष्य की बात करें तो सारे संसार का स्वामी एवं सब प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ कहलाने वाले इस मानव के जीवन में खाने-पीने, रहने-सहने, बोलने-चालने, पहनने-ओढ़ने से लेकर सोने-जागने, कहने-सुनने और उठने-बैठने तक के लिए कोई नियम, सिद्धान्त व कुछ मर्यादाएँ हों, ऐसा दिखाई नहीं देता। संक्षेप में कहें तो जीवन को बनाये रखने वाली मर्यादाओं व शाश्वत जीवन मूल्यों को नष्ट-भ्रष्ट करके परमात्मा की स्वर्ग जैसी सुखद सृष्टि को नरक जैसी दुःखद बना डालने वाला मूढ़ मानव जीवन से निराश होने लगा है।

पूरी तरह अमर्यादित होकर उद्दण्डता के रास्ते चलते हुए जाने-अनजाने में अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारकर रक्तरंजित हो चुके मानव की पतनगामी प्रवृत्तियों पर कलम चलाने की अपेक्षा उचित यह होगा कि अविद्यान्धकार में आपाद-मस्तक डूब चुके मानव की चेतना में प्रभु की अमर वेदवाणी का पावन प्रकाश प्रविष्ट कराया जाए। वेद में परमात्मा ने चार सौ वर्ष तक जीने की बात कही है। चालीस वर्ष में जीवन से हार चुके मानव के सामने चार सौ वर्ष तक जीने की कला रखी जाए तो निश्चित रूप से उसके अन्दर एक नई ऊर्जा, नई आशा व नये उत्साह का संचार होगा। जीवन जीने की इच्छा तो मानव का शाश्वत स्वभाव है, लेकिन जब वह जीवन भार बन जाए तो उसे ढोते-ढोते वह ५०-६० वर्षों में ही थक जाता है। वह थकावट को तो अनुभव कर लेता है लेकिन जीवन भार

बना क्यों, इस पर कभी विचार नहीं करता। **छान्दोग्य उपनिषद्** के ऋषि इस दिशा में संकेत करते हुए लिखते हैं-

'त इमे सत्याः कामाः अनृतापिधानाः' (८.३.१)

अर्थात् आत्मा की सत्य, श्रेष्ठ व कल्याणकारी कामनाओं को सांसारिक झूठी कामनाएँ ढंक लेती हैं अर्थात् आत्म-कल्याण की, आत्मा को सच्चा आनन्द देने वाली जो सत्य कामनाएँ हैं, वे सांसारिक कामनाओं के नीचे दबी पड़ी रहती हैं। मनुष्य सांसारिक कामनाओं, इच्छाओं को पूरा करने में लगा रहता है। आज की भोगवादी प्रवृत्ति के ज्वार पर सवार मानव की सांसारिक इच्छाएँ इतनी बढ़ गई हैं कि लाख हाथ-पैर मारकर भी वह इन्हें पूरी नहीं कर पाता, हाँ, सांसारिक कामनाओं की पूर्ति के लिए भागदौड़ करते-करते वह थककर टूट जाता है, ऐसे में उसके लिए जीवन भार बनकर रह जाता है।

सच में यह जीवन भार नहीं है, जीवन तो हँसती-खेलती, उछलती-कूदती, किलोल करती हुई सरस सरिता की तरह है जो किसी से कुछ भी न चाहती-माँगती हुई सबको जीवन-यापन के संसाधन उपलब्ध कराना ही अपने जीवन का ध्येय मानती है। सच यह है कि जीवन का सुख देने में है, लेने में नहीं। जो लेने में सुख का अनुभव करते हैं, उनके लिए जीवन सच में भार बनकर रह जाता है। कौन नहीं जानता कि लेने वाले पर भार बढ़ता रहता है और देने वाला निरन्तर हल्का होता रहता है। जो लेने में सुख मान बैठे हैं, वे नहीं जानते कि वे प्रकृति के स्वभाव के प्रतिकूल आचरण कर रहे हैं। **रामधारी सिंह दिनकर 'रश्मिरथी'** में लिखते हैं-

दान प्रकृति का सहज धर्म है, मनुज व्यर्थ डरता है।
एक दिन तो उसको यहाँ सब कुछ देना ही पड़ता है।।
किस पर करते उपकार वृक्ष यदि अपना फल देते हैं।
गिरने से पहले सम्भाल क्यों रोक नहीं लेते हैं?

अगली पंक्तियों में **दिनकर** दान देने की अनिवार्यता को समझाते हैं-

ऋतु के बाद फलों का रुकना डाली का सड़ना है।
आयें नव फल इसीलिये उनको तो गिर पड़ना है।।

सुधी पाठकों को यह जानकर अति आनन्द होगा कि हमारी वैदिक संस्कृति के उपासक हमारे पूर्वज एक सर्वमेध यज्ञ किया करते थे। इस सर्वमेध यज्ञ में अपना सब कुछ दान करके एक बार पूरी तरह रिक्त-हस्त हो जाते थे। **कठोपनिषद्** व **कालिदास** के साहित्य में ऐसे यज्ञों का उल्लेख मिलता है। भला ऐसे उदार स्वभाव के परोपकारी सज्जनों के लिये जीवन भार कैसे हो सकता है? हमने अपनी देव-संस्कृति, देव-परम्परा को भुलाकर जीवन को स्वार्थ और संकीर्णता के अन्धकूप में धकेलकर सच में भार ही बना लिया है। हम भूल गये कि हम देवों की सन्तान हैं, देना हमारा स्वभाव है। श्रीराम जब वन को जा रहे थे, गुह उनके लिये भोजन लेकर आया और श्रीराम से भोजन ग्रहण करने की प्रार्थना करने लगा तो श्रीराम ने बड़े आत्मीय भाव से जो उत्तर दिया, वह हम सब श्रीराम-भक्तों, देव-सन्तानों को अपने हृदय पटल पर स्वर्ण-अक्षरों में अंकित कर लेना चाहिए। श्रीराम बोले-

'न हि अस्माभिः प्रतिग्राह्यं सखे देयं तु सर्वदा।'

हे सखा! हे मित्र! हमने कभी किसी से कुछ लिया ही नहीं, मित्र, हमने सदा देना ही सीखा है। ऐसा कहकर श्रीराम ने भोजन ससम्मान लौटा दिया तथा केवल जल पीकर रात्रि विश्राम किया। ऐसे देव पुरुषों का जीवन धन्य बन जाता है, भार नहीं। हमने अपने ऐसे महामानवों को जीवन का आदर्श न मानकर पूजा की वस्तु बनाकर मन्दिरों में रख दिया। हमारा दुर्भाग्य देखिये, रामायण के रचयिता **महर्षि वाल्मीकि 'रामायण'** लिखने का उद्देश्य प्रकट करते हुए लिखते हैं-

'रामादिवत् प्रवर्तितव्यं न तु रावणादिवत्।'

अर्थात् मैंने यह रामायण इसलिये लिखी है कि आने वाली पीढ़ियाँ श्रीराम के जैसा आचार-व्यवहार करें, रावण जैसा नहीं। राम का जीवन जीने के लिये है पूजने के लिए नहीं। ऐसे देव-पुरुषों, महामानवों के मानवीय आदर्शों व जीवन मूल्यों की अनदेखी करके ही हमने अपने जीवन को भार बना लिया है, इसीलिए न हमारा सौ वर्ष का जीवन ही रहा और न अधिक जीने की लालसा।

जीवन का आनन्द तो देने में है, देवता बनने में है। ऋग्वेद में आता है-

''व्रता देवानां मनुषश्च धर्मभिः'' (३.६०.६)

अर्थात् देवों के व्रत, नियम व मर्यादाएँ ही मनुष्यों के लिए पालनीय धर्म हैं। हम देवों के व्रतों अर्थात् देने को स्वभाव को अपना धर्म न मानकर लेने में, स्वार्थपूर्ति में ही सुख मानने लगें तो जीवन तो भार बनेगा ही। भार बन चुके जीवन को सौ वर्षों तक ढोना न तो मनुष्य को स्वीकार है न परमात्मा को। परमात्मा का स्पष्ट आदेश है-

'न देवानां अतिव्रतं शतात्मा च न जीवति'

(ऋ. १०.३३.९)।

अर्थात् देवों के व्रत दानशीलता, यज्ञ व परोपकार आदि का अतिक्रमण (उल्लंघन) करके मनुष्य सौ वर्ष तक नहीं जी सकता। **'देवो दानाद्वा'** के अनुसार देने वाले को ही देव कहते हैं। **महर्षि याज्ञवल्क्य** की स्पष्ट घोषणा है- **'यज्ञ एव देवानामात्मा'** (शत. ८.६.१.१०) अर्थात् यज्ञ ही देवों का आत्मा है। जहाँ यज्ञ नहीं, वहाँ देवता रह ही नहीं सकते। इस प्रकार दानशीलता, उदारता, परोपकार की भावना को त्याग दिया जाए, मनुष्य केवल स्वार्थ पूरा करने, अपना हित, अपना लाभ व अपना सुख ही देखने लगे तो जीवन सच में भार बन जाता है, मनुष्य की आयु सौ वर्ष से घटकर कम हो जाती है। वर्तमान का हम सबका अनुभव इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। संसार के सब सुधी सज्जनों को संकीर्ण स्वार्थों से, केवल अपने सुख-लाभ की भावना से, लेने में सुख मानने की प्रवृत्ति से ऊपर उठकर परोपकार की भावना, देने में सुख मानने की देव-प्रवृत्ति को अपने जीवन में स्वीकारने व दूसरों को सिखाने-समझाने के लिए प्रयास अवश्य-अवश्य करने चाहिएँ। यही देवों का व्रत है, यही मनुष्यों का धर्म है। धर्म शब्द **'धृ धारणे'** धातु से बनता है जिसका अर्थ ही धारण करना है। देवों का व्रत ही मनुष्यों के जीवन को धारण करने, बनाये रखने का मूल आधार है। स्वार्थ मरण है, परमार्थ जीवन है। लेने की प्रवृत्ति मरण है, देने का स्वभाव ही जीवन है। सुख देकर सुख पाना ही प्रकृति का शाश्वत सिद्धान्त है।

वैदिक संस्कृति के सभी सिद्धान्त मानवीय होने के साथ-साथ विज्ञान सम्मत भी हैं। यूरोप भारत के साथ एक कुटिल खेल-खेल रहा है। कोई विश्वास करे या न करे, सच यह है कि यूरोप की सारी वैज्ञानिक उन्नति हमारे वैदिक साहित्य की देन है। तकनीकी ज्ञान-विज्ञान से लेकर मानवीय जीवन मूल्यों-यज्ञ व परोपकार आदि भारतीय जीवन दर्शन को लेकर यूरोपीय वैज्ञानिक सदियों से काम करता व लाभ उठाता रहा है। तकनीक व चिकित्सा के बारे में चर्चा करना विषयान्तर होगा, यज्ञ सम्बन्धी वैज्ञानिक परीक्षण व उसके असंख्य लाभों पर चर्चा करना भी प्रसंग से हटकर होगा। हाँ, दैवीय जीवन, देने में सुख को लेकर यूरोप में जो परीक्षण वहाँ के समाजशास्त्री कर रहे हैं, साथ में जो चिकित्सकीय अनुसन्धान के निष्कर्ष निकल रहे हैं वे वैदिक संस्कृति के जीवन मूल्यों की शाश्वत सच्चाई को प्रमाणित कर रहे हैं। कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने एक शोध में पाया कि निःस्वार्थ भाव से दूसरों की सहायता व सेवा करने में हमारे मस्तिष्क का 'वेंट्रल स्ट्रिएटम' नामक भाग सक्रिय हो जाता है, जिससे डोपामाइन नामक रसायन निकलता है। यह रसायन मस्तिष्क को सन्तुलित रखने व खुशी अनुभव कराने का काम करता है। शोधकर्त्ताओं ने यह भी पाया कि अपने निकट रहने वाले लोगों की सहायता व सेवा करने से आयु बढ़ती है तथा यह गुण जीन्स के द्वारा हमारे वंशजों को भी मिलता है। जीवविज्ञानी **डॉ. मार्नी रॉबिन्सन** की पुस्तक- **'क्यूपिड्स-पॉइजण्ड ऐरो'** के अनुसार अपनी खुशी के लिए जब हम काम करते हैं तो एक ऐसा हार्मोन निकलता है जो और अधिक पाने की तीव्र इच्छा तो पैदा करता है लेकिन सन्तुष्टि नहीं देता। यह एक इच्छा पूरी होने पर दूसरी इच्छा पैदा करता है। ब्रिटिश कोलम्बिया विश्वविद्यालय और हार्वर्ड बिजनेस स्कूल के शोधकर्त्ताओं ने कनाडा, दक्षिण अफ्रीका व भारत आदि देशों में अध्ययन किया तथा १३६ देशों के आँकड़े देखकर निष्कर्ष निकाला कि अपनी आवश्यकताएँ भी पूरी न कर पाने वाले लोग जब दूसरों की आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए धन खर्च करते हैं तो उन्हें अधिक सुख प्राप्त होता है। शोधकर्त्ताओं का स्पष्ट कहना है कि दूसरों को सुख देने में आनन्द की अनुभूति होना पूरी मानव जाति का मनोवैज्ञानिक गुण है।

दान की प्रवृत्ति और दूसरों को सुख देने से जुड़ा हुआ एक रोचक व प्रेरक प्रसंग अमेरिका के प्रसिद्ध उद्योगपति एवं दानवीर **जॉन रॉक फैलर** के जीवन से जुड़ा हुआ है। रॉक फैलर ने कहा था-**''मैंने इतना पैसा इसलिए कमाया,**

क्योंकि मुझमें लोगों की सहायता करने की भावना है। मैंने लोगों को दिया, इसलिए मुझे मिला। यदि मैं सही ढंग से पैसा दान करना बन्द कर दूँ तो ईश्वर मुझसे पैसा वापिस ले ले।'' प्रसिद्ध अर्थशास्त्री **जॉन सी. ब्रुक्स** ने जब रॉक फैलर का यह कथन पढ़ा तो उसे बड़ा विचित्र लगा कि पैसा बाँटकर कोई पैसा कैसे कमा सकता है? इसी अन्तराल में हार्वर्ड विश्वविद्यालय के शोधकर्त्ताओं ने अमेरिका के ४१ समुदाय के ३०,००० लोगों के सेवा भाव और दान देने की प्रवृत्ति का अध्ययन करने का निर्णय लिया। अध्ययन का परिणाम यह आया कि जिनमें दान देने की प्रवृत्ति अधिक थी, वे अधिक धनवान् पाये गये। जॉन सी. ब्रुक्स ने रॉक फैलर के कथन और हार्वर्ड के अध्ययन को गलत सिद्ध करने के लिए आँकड़ों पर काम किया तो उसका सिर चकराने लगा। उसके आश्चर्य का तब ठिकाना नहीं रहा जब उसने यह देखा कि रक्तदान करने वाले लोग भी अपेक्षाकृत अधिक धनवान् हुए हैं। ब्रुक्स ने अमेरिकी अर्थव्यवस्था व दान प्रवृत्ति के ५० वर्षों के आँकड़े जुटाये तो पाया कि जब अमेरिकी लोगों के दान की रकम एक प्रतिशत बढ़ी तो अमेरिकी बाजार में एक अरब डॉलर आते हैं, जिनसे नये ३९ अरब डॉलर पैदा होते हैं। इतना ही नहीं ब्रुक्स ने फ्रांस, जर्मनी व इटली के साथ तुलनात्मक अध्ययन भी किया। इन सबसे आश्चर्य के सागर में गोते लगाते हुए ब्रुक्स अपने मनोवैज्ञानिक मित्र के पास जाकर इसका रहस्य पूछने लगे तो मित्र ने कहा– ''हम यह बात वर्षों से जानते हैं। तुम अर्थशास्त्री केवल पैसा देखते हो, पैसा जो खुशी लाता है, हम उसे देखते हैं। खुश व्यक्ति अधिक उत्पादक होता है, अधिक काम करता है।''

सम्भवतः आज के स्वार्थपूर्ण युग में जीने वाला मानव इन तथ्यों, तर्कों पर भरोसा न कर सके, लेकिन इस सच को झुठलाने के लिए किसी के पास एक भी तथ्य व तर्क नहीं है। हम भारतीयों को गर्व होना चाहिए कि हमारी जीवन शैली से जुड़ी वेदोक्त मानवीय सभ्यताएँ आज भी वैज्ञानिक अनुसन्धानों, सामाजिक शोध निष्कर्षों व अर्थशास्त्रीय आँकड़ों आदि सभी दृष्टियों से सत्य ही सिद्ध हो रही हैं। अगर इतने पर भी हमारी बुद्धि इस ईश्वरीय व्यवस्था को, इस शाश्वत सिद्धान्त को, इस देने के सुख को स्वीकार न कर सके तो यह हमारा दुर्भाग्य ही होगा। सुधी पाठक इन तथ्यों, तर्कों को प्रेरणा बनाकर, भार बन चुके जीवन और निरन्तर निर्बल होती जा रही जीवनी-शक्ति को प्राणदायी ऊर्जा के रूप में बदलने के लिए दैवीय व्रतों को जीवन का अंग बनाकर, देने में सुख के सिद्धान्त को व्यवहार में लाकर इसे एक ऐसा आन्दोलन बनाएँ जिससे जुड़कर जीवन से थका आज का मानव सौ वर्ष की पूर्णायु के लिए पुनः लालायित हो उठे। आज सत्ता के शीर्ष पदों पर बैठे लोगों के कुटिल व्यवहार और उनके अन्याय से खिन्न मानव का सम्भवतः परमात्मा की न्याय-व्यवस्था से भी विश्वास उठ चुका है। ऐसे में हम तो यही कहेंगे कि परमात्मा की कोई व्यवस्था कभी नहीं बदलती। दान देना, दुःखियों की सेवा-सहायता करना, अभावग्रस्त, असहाय निर्धनों की निःस्वार्थ सहायता करना ऐसे काम हैं, जिनका सुखद सुफल ईश्वर के अधीन है। नालन्दा विश्वविद्यालय के पं. शान्तिदेव के प्रेरक वाक्यों के साथ हम लेखनी को विराम दे रहे हैं। शान्तिदेव ने कहा था– ''संसार में जो भी सुख है, वह दूसरों के लिए सुख देने के प्रयासों, कामनाओं से आया है। जबकि संसार में जो भी दुःख-दुर्गति है, वे स्वयं के लिये सुख पाने की कामना से उत्पन्न हुये हैं।''

पुनश्च– **आपदां कथितः पन्था इन्द्रियाणां असंयमः।**
तज्जयः सम्पदां मार्गो, येन इष्ट तेन गम्यताम्।।

इन्द्रियों को सांसारिक विषयों में खुला छोड़कर खाने-पीने आदि में ही लगे रहना आपत्तियों को बुलावा देना है तथा इनको संयम में रखकर तप-त्याग और सेवा का जीवन जीना सम्पत्तियों का मार्ग है। सुधी पाठक, दोनों मार्ग खुले पड़े हैं, जो अच्छा लगे उसे ही स्वीकार कर लें।

आर्यसमाज, श्रीगंगानगर, राज.

मिथ्या बात के प्रचार से अनर्थ बढ़ता है

जो मिथ्या बात न रोकी जाए तो संसार में बहुत से अनर्थ प्रवृत्त हो जायँ। (स. प्र. भू.)

आर्यसमाज और युवा पीढ़ी

विनोद कालरा

१० अप्रैल १८७५! कहने को इतिहास की एक तारीख! लेकिन कितना पावन और महान् दिन था जब महामना महर्षि स्वामी दयानन्द ने इस दिन बम्बई में आर्य-समाज की स्थापना की। सर्वविदित है कि **भारत में क्षीण पड़ गई सत्य सनातन वैदिक धर्म की मान्यताओं तथा शिक्षाओं को पुनः प्रसारित और स्थापित करने की मूल और शुद्ध भावना के साथ ऋषिवर ने आर्यसमाज की स्थापना की थी।** इसके बाद से आर्यसमाज ने एक शताब्दी से भी अधिक की लम्बी यात्रा की जिसके दौरान भारत में ही नहीं विदेशों में भी आर्यसमाजों की स्थापना हुई और आज विश्व भर में आर्यसमाज की संख्या हजारों में हैं, जो एक अच्छी बात भी है। लेकिन मैं इससे आगे की बात आपके साथ साझा करना चाहता हूँ। आज आर्यसमाज को भवनों की संख्या की दृष्टि से देखा जाए तो हम आर्यसमाज के प्रसार पर गर्व कर सकते है, परन्तु क्या हम यह गर्व आर्यसमाज के अनुयायियों की संख्या की दृष्टि से कर सकते हैं? और यदि हम इसमें वैदिक सिद्धान्तों में सच्ची आस्था रखने वाले 'आर्य अनुयायी' शब्द भी जोड़ दें तो क्या यह संख्या और कम नज़र नहीं आती?

आज हम बहुधा इस विषय को लेकर विचार-मंथन और चर्चा करते हैं कि आर्यसमाज से अधिक लोग क्यों नहीं जुड़ रहे हैं? क्यों विशेषकर छोटे नगरों, कस्बों के आर्यसमाज के प्रांगण साप्ताहिक सत्संगों में भी सूने दिखाई पड़ते है। साथ ही हमारे वैदिक विद्वान् और आर्य नेता इस बात से चिन्तित भी रहते है और मंथन भी करते हैं कि युवा पीढ़ी को आर्यसमाज के साथ कैसे जोड़ा जाए, और सच पूछा जाए तो युवा पीढ़ी का न जुड़ना आज आर्यसमाज के प्रसार का सबसे बड़ा संकट है।

इस सन्दर्भ में मेरा यह मानना है कि हम वेद और वैदिक विचारधारा के प्रचार-प्रसार के लिए तन और मन से प्रयास तो कर रहे हैं लेकिन अपेक्षित परिणाम हमें नहीं मिल रहे हैं। मुझे इसकी सबसे बड़ी वजह यह लगती है कि वेदों का सत्य और अनुपम ज्ञान होते हुए भी, आर्यसमाज भक्ति और अध्यात्म की वो लहर पैदा नहीं कर पा रहा है जो युवाओं को ही नहीं बल्कि अन्य लोगों को भी आर्यसमाज से जोड़ सके।

मै, इस बात को और अधिक स्पष्ट करना चाहूँगा। यदि आप गौर से देखें तो वर्तमान हिन्दू समाज में भक्ति, सत्संग और अध्यात्म के नाम पर मुख्य रूप से दो प्रकार की धाराएँ अथवा आयोजन-प्रयोजन चल रहे हैं। पहली है, धर्म-कथाओं के आयोजन, जो गुरुओं और कथाकारों द्वारा आयोजित किए जाते हैं जिनमें मुख्य तौर पर भागवत पुराण की कथाएं की जाती हैं। इन कथाओं में भगवान् के अवतारों की कथाएँ अत्यन्त मार्मिक ढंग से सुनाकर भक्तों को भावुक करके उन्हें झूमने के लिए मजबूर किया जाता है। निःसंदेह इसमें काफी कुछ नाटकीयता भी पैदा की जाती है और कहीं-कहीं गुरु-पूजा भी की जाती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह आयोजन आज हर दूसरे गली-मोहल्ले में आयोजित हो रहे हैं।

दूसरी भक्ति-धारा या आयोजन वो हैं, जिनमें ध्यान-साधना द्वारा लोगों को आध्यात्मिकता द्वारा ईश्वर से जोड़ने का प्रयास किया जाता है। इसमें ध्यान की अलग-अलग पद्धतियों का प्रयोग किया जा रहा है, जैसे सुदर्शन क्रिया, कुंडलिनी जागरण, चक्र-ध्यान आदि जो कि आर्ट ऑफ लिविंग, ब्रह्माकुमारी, अम्मा, विश्वास, मेडिटेशन जैसे छोटे-बड़े कई संस्थान करा रहे हैं। आपने देखा होगा इनके यहाँ भी हजारों की संख्या में भीड़ जुटती है।

यदि आप गौर करें तो पाएंगे कि इन दो धाराओं में भक्तों को जोड़ने के तरीके भले ही अलग-अलग हैं लेकिन इनमें एक चीज कॉमन है वह है आनन्द। अब इस आनन्द के दो पक्ष हैं- **एक,** भक्तों को भागवत पुराण की कथाओं से जो तथाकथित आनन्द मिलता है। भले ही उस आनन्द को पैदा करने के लिए लोगों को गुरुओं के नाम पर रिझाया जाता हो या फिर ईश्वर का सच्चा ज्ञान न दिया जाता हो, लेकिन सच यह है कि वहाँ लोग जाना पसंद करते है। **दूसरे,** जो ध्यान-योग कराने वाले गुरुओं या

संस्थाओं में जाते हैं उनकी मानें तो उन्हें वहां शांति और आनन्द मिलता है।

अब मूल बिन्दु पर आते हैं- ऐसे परिदृश्य में आर्यसमाज क्या करे? आज आर्यसमाज के पिछड़ जाने के दो मुख्य कारण हैं- **पहला** यह कि हम भक्ति की वो लहर पैदा नहीं कर पा रहे और **दूसरा** यह कि आर्यसमाज का कोई एक स्वरूप नहीं है। आज इसका स्वरूप न तो पूर्ण रूप से एक वैदिक विचारधारा का प्रसार करने वाली गहन संस्था का है और न ही समाज को वेदों की ओर ले जाने वाले एक धार्मिक संगठन का। यह स्वरूप बने तो कैसे? इसके लिए जरूरी है कि आर्यसमाज वेदों की धारा के साथ चलते हुए ही भक्ति की लहर भी लाए जिससे उसके ठोस स्वरूप का निर्माण भी होगा। परन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि हम वैदिक विचारधारा को छोड़ कर भागवत पुराण के समान कथाएं करें और कोई गुरु पैदा करें।

मेरा मत है कि आर्यसमाज को भी अपने सत्संगों में भक्ति की लहर और आनन्द पैदा करना होगा। आज आर्यसमाज युवा को अपने साथ न जोड़ पाने के संकट से जूझ रहा है। इससे अगर पार पाना है तो अन्य उपायों के साथ जरूरी है कि हम भी अपने सत्संगों में भक्ति और रस का सरस संगम करें। इसके लिए, ऊपर जिन दो धाराओं की आपसे चर्चा की गई है उनमें से, ध्यान को हमें अपने सत्संगों का अंग बनाने की आवश्यकता है। फिर ध्यान करना न तो अवैदिक है और न ही वैदिक विचारधारा के विपरीत है। इसके लिए हमें कोई बहुत भागीरथ प्रयास करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वेद जैसा पवित्र, ईश्वरीय और सार्वभौमिक ज्ञान का आधार तो हमारे पास पहले से ही है और इसे हम अपने उत्तम विद्वानों के माध्यम से प्रसारित भी कर रहे हैं। बस थोड़ा प्रयास यह करना होगा कि हम अपने ज्ञान को प्रसारित करने के तरीकों में सरसता और उल्लास पैदा करें।

ध्यान, साधना और संगीत दो ऐसे माध्यम हैं जिनसे हम ऐसा बखूबी कर सकते हैं। इसका व्यावहारिक तरीका यह है कि रविवार को होने वाले सत्संगों में १५ से २० मिनट ध्यान का गहन कार्यक्रम हो और उसके बाद आधे या पौने घंटे के वेद- प्रवचन हों और महीने में कम से कम एक रविवार सुमधुर भजनों का कार्यक्रम हो। वार्षिक कार्यक्रमों में भी ध्यान को स्थान दिया जाए और वेद की ऋचाओं का संगीतमय गायन हो। इससे लाभ यह होगा कि हम उस युवा पीढ़ी को अपने साथ जोड़ पाएंगे जो शांति की तलाश में हजारों रुपए की फीस देकर भी उन संस्थाओं या गुरुओं के पास जा रही है जिनके पास ज्ञान के नाम पर राम-राम या राधा-कृष्ण बोलने के अतिरिक्त कुछ नहीं है, ईश्वर-प्राप्ति का सही मार्ग दिखलाने की तो कौन कहे? इसे आप पैकेज का नाम भी दे सकते हैं और आज हर दूसरा तथाकथित धार्मिक गुरु या संगठन ऐसे ही पैकेजों के सहारे अपने नाम का डंका पीट रहा है और ऐसे पैकेजों को बेच भी रहा है। परन्तु यहाँ व्यावसायिक होने की हिमायत नहीं की जा रही। आर्यसमाज की यह विशेषता रही है कि उसने कभी ज्ञान और आस्था का व्यापार नहीं किया है और न ऐसा करने की बात की जा रही है। बस, बात यहाँ केवल इतनी है कि समय और परिस्थितियों को देखते हुए आर्यसमाज अपनी प्रसार रूपी वीणा में सुर वेदों का ही रखे लेकिन ताल में परिवर्तन लाए ताकि हम देव दयानन्द के स्वप्न को समय रहते पूर्ण कर सकें।

आर्यसमाज, प्रशान्त विहार, नई दिल्ली

परमेश्वर सगुण व निर्गुण है

परमेश्वर सगुण व निर्गुण दोनों प्रकार के है। जो गुणों से सहित वह सगुण और जो गुणों से रहित वह निर्गुण कहाता है। अपने-अपने स्वाभाविक गुणों से सहित और दूसरे विरोधी के गुणों से रहित होने से सब पदार्थ सगुण और निर्गुण है, कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं है जिसमें केवल निर्गुणता व केवल सगुणता हो। किन्तु एक ही में सगुणता और निर्गुणता सदा रहती है। वैसे ही परमेश्वर अपने अनन्त ज्ञान, बलादि गुणों से सहित होने से सगुण और रूपादि जड़ के तथा द्वेषादि जीव के गुणों से पृथक् होने से निर्गुण कहाता है। (स.प्र.स.७)

ऋषि दयानन्द की जन्मतिथि अनुसन्धान की दिशा और दृष्टि

डॉ. ज्वलन्तकुमार शास्त्री

ऋषि की जन्मतिथि पर सार्वदेशिक धर्मार्य्य सभा ने १९५६ ई. में २५ मई की प्रथम बैठक से विचार करना प्रारम्भ कर दिया था। द्वितीय बैठक २७ जनवरी १९५७ ई. को हुई। फिर ८ जून १९५८ की तृतीय बैठक के बाद २३ जुलाई १९६० ई. की अन्तिम बैठक में यह विषय पुनः प्रस्तुत होकर निर्णीत हुआ। २३ जुलाई १९६० ई. को यमुनानगर में हुए सार्वदेशिक धर्मार्य्य सभा के अधिवेशन में निश्चय किया गया कि ऋषि की जन्मतिथि संवत् १८८१ फाल्गुन बदि दशमी (१२ फरवरी १८२५ ई.) शनिवार है। इसकी पुष्टि सार्वदेशिक अन्तरंग सभा ने सर्वसम्मति से २ अप्रैल १९६७ ई. को की। इस निर्णय में स्वामी आत्मानन्द सरस्वती, पं. भीमसेन शास्त्री (कोटा), आचार्य विश्वश्रवाः व्यास, पं. धर्मदेव विद्यामार्त्तण्ड तथा आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री पूर्णतया सहमत थे। इतने वर्षों तक चली विचार-विमर्श की प्रक्रिया में श्री पं. भगवद्दत्तजी, पं. इन्द्रदेवजी (पीलीभीत), पं. श्री ऋषिमित्र जी बम्बई तथा श्री पं. विजयशंकर जी मुम्बई से भी इस सम्बन्ध में विचार किया गया था।

कालान्तर में जब मैं इस विषय पर शोध-अनुसन्धान में प्रवृत्त हुआ तब मैंने दो लेख लिखे-(१) लघु लेख (जो मेरे द्वितीय प्रदीर्घ निबन्ध का सारांश था) (२) बृहत् शोध निबन्ध। (१) सारांश वाला लघु लेख १९८९ ई. में कई आर्य पत्रों में छपा। (यथा-द्रष्टव्य 'आर्यजगत्' का ऋषि बोधाङ्क १९८९ ई.)। (२) प्रदीर्घ बृहन्निबन्ध 'वेदवाणी' के 'दयानन्द विशेषाङ्क' (७) में जनवरी १९९० ई. के अंक में छपा। यही प्रदीर्घ निबन्ध पुस्तक रूप में 'स्वामी सत्यप्रकाश प्रतिष्ठान, आर्यसमाज रायबरेली (उ.प्र.)' से छपा। पुनः इसका द्वितीय संस्करण संशोधित और परिवर्द्धित रूप (११० पृष्ठों) में २००९ ई. में श्री घूड़मल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास, हिण्डौन सिटी, राजस्थान से छपा। इस संस्करण में इतिहासज्ञ प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु' की विद्वत्तापूर्ण भूमिका भी थी। परिशिष्ट-५ में डॉ. भवानीलाल भारतीय ने इस गवेषणापूर्ण पुस्तक के आलोक में अपना मन्तव्य भी सार्वदेशिक धर्मार्य्य सभा के निर्णय से सहमति प्रदर्शित करते हुए तथा मेरे शोध-निष्कर्ष की पुष्टि करते हुए अपने पूर्वमत के परिवर्त्तन से भी पाठकों को परिचित कराया। इतना ही नहीं आगे चलकर डॉ. भारतीय ने अपनी पुस्तक 'नवजागरण के पुरोधा : दयानन्द सरस्वती' के द्वितीय संस्करण (प्रकाशक-घूड़मल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास) की टिप्पणी में अपना संशोधित मत (जो सार्वदेशिक धर्मार्य्य सभा के निर्णय फाल्गुन बदि दशमी १८८१ विक्रमी संवत् के समर्थन में था) प्रदर्शित कर दिया। कहना नहीं होगा कि एतद्विषयक मेरे शोध-परक अध्ययन से सार्वदेशिक धर्मार्य्य सभा के निर्णय की ही पुष्टि हुई थी। मेरी इस पुस्तक 'महर्षि दयानन्द सरस्वती की प्रामाणिक जन्मतिथि' का तृतीय संस्करण भी २०१५ ई. में पूर्वोक्त प्रकाशक द्वारा प्रकाशित किया जा चुका है।

अब २९ वर्षों के बाद श्री आदित्यमुनि जी (भोपाल) ने 'स्वामी दयानन्द सरस्वती की वास्तविक जन्म तिथि' शीर्षक से ३६ पृष्ठों की एक लघु पुस्तक प्रकाशित की है जिसमें उन्होंने ऋषि दयानन्द की जन्मतिथि २० सितम्बर १८२५ ई. बताने का प्रयास किया है। अपनी पुस्तक का सारांश भी एक लघु लेख के माध्यम से उन्होंने लिखा है जिसका शीर्षक है-'आर्यसमाज अपने संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती का जन्मदिन ही गलत मना रहा है'। यह लेख उन्होंने 'वेदवाणी' के सम्पादक श्री प्रदीप शास्त्री के पास प्रकाशनार्थ भेजा है। माननीय श्री प्रदीप जी ने यह लेख मेरे पास भेजकर मेरा उत्तर या पक्ष जानना चाहा है, अतः प्रथमतः उनके सारांश रूप लेख का उत्तर ही लिख रहा हूँ।

(१) पहली बात तो यह है कि सार्वदेशिक धर्मार्य्य सभा से निर्णीत तिथि फाल्गुन बदि दशमी १८८१ विक्रमी संवत् (१२ फरवरी १८२५ ई.) के पक्ष में आर्य विद्वानों की लम्बी फेहरिश्त है, कुछ का उल्लेख पूर्व में कर चुका

हूँ। मेरी पुस्तक छपने के बाद धर्मार्य्य सभा के निर्णय दयानन्द दशमी (फाल्गुन बदि दशमी) का समर्थन करने वाले आर्य विद्वानों में से कुछ के नाम इस प्रकार हैं-स्वामी विद्यानन्द सरस्वती, स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती, पं. राजवीर शास्त्री (दयानन्द सन्देश), डॉ. शिवपूजन सिंह कुशवाह, प्रो. उमाकान्त उपाध्याय, डॉ. धर्मवीर अजमेर, डॉ. जयदत्त शास्त्री उप्रेती, डॉ. राजेन्द्र जिज्ञासु, श्री भावेश मेरजा, डॉ. रामप्रकाश, डॉ. शिवकुमार शास्त्री (दिल्ली), वैद्य विश्वम्भर दयाल गोयल (लखनऊ), डॉ. वेदपाल, श्री शिवनारायण उपाध्याय इत्यादि। अस्तु।

अब श्री आदित्य मुनि जी के लेख की परीक्षा की जाती है।

आदित्यमुनि- जब स्वामी दयानन्द सरस्वती की वय २१ वर्ष की भाद्रपद शुक्ल नवमी की तिथि पर गुजराती संवत् १९०२ में पूरी हो गई तो आगे ५१ दिनों के बाद ही कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा से आरम्भ होने वाले गुजराती संवत् १९०३ में उन्होंने गृह-त्याग कर दिया और कुछ ही दिनों के बाद वे कार्तिक पूर्णिमा से आरम्भ होने वाले कार्तिकी के मेले में जा पहुँचे जैसा कि उन्होंने स्वयं ही मार्ग में मिलने वाले एक स्वपरिचित बैरागी के पूछने पर बताया था कि ''हाँ, मैंने घर छोड़ दिया है और कार्तिकी के मेले पर सिद्धपुर को जाऊँगा।''

समीक्षा- उक्त लेख से स्पष्ट है कि आदित्यमुनि जी स्वामीजी का गृह-त्याग कार्तिकी शुक्ला प्रतिपदा से प्रारम्भ होने वाली कार्तिकी गुजराती संवत् १९०३ के कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष में मानते हैं, आदित्यमुनि जी के अनुसार स्वामी जी गृह-त्याग के १०-१२ दिनों के अनन्तर सिद्धपुर में कार्तिक पूर्णिमा से प्रारम्भ होने वाले कार्तिकी के मेले में जा पहुँचे, जहाँ उनकी भेंट अपने पिता से हुई। आदित्यमुनिजी का यह मिथ्या लेखन अकाण्ड ताण्डव है और इससे उत्पन्न होने वाले अनेक प्रश्नों का कोई जवाब उनके पास नहीं है। जैसे स्वामीजी अपने गाँव टंकारा से निकल कर कुछ दिनों बाद सायला में लाला भगत जोगी के यहाँ पहुँचे। सायला में ऋषि के निवास की अवधि एक मास रही। इसे पं. लेखराम, पं. युधिष्ठिर मीमांसक, पं. भगवद्दत्त आदि सभी ऋषि-जीवनी के अनुसन्धाता विद्वान् मानते हैं। जिन श्रीकृष्ण शर्मा द्वारा कल्पित कुण्डली के आधार पर आदित्यमुनि ने ऋषि का जन्म २० सितम्बर १८२५ ई. माना है, वे श्रीकृष्ण शर्मा भी सायला में ऋषि के निवास की अवधि एक-डेढ़ मास मानते हैं। [द्रष्टव्य-महर्षि दयानन्द (मूलशंकर) सरस्वती का वंश परिचय (श्रीकृष्ण शर्मा), पृ. २८ का वक्तव्य-''सायला...लाला भगत के मन्दिर...महर्षि वहाँ कार्तिकी संवत् १९०२ के आषाढ़ और श्रावण मास में लगभग डेढ़ मास तक ठहरे थे।'']

पं. भगवद्दत्त लिखते हैं-''कार्तिक में सिद्धपुर आये। तीन मास कोटकाङ्गड़ा में रहे तथा प्राय: एक मास तक लाला भक्त के ग्राम सायला में रहे। पाँच-सात दिन का यह सारा मार्ग है। अत: यह प्रतीत होता है कि स्वामीजी संवत् १९०३ विक्रम ज्येष्ठ के अन्त, अर्थात् मई १८४७ को घर से निकले थे।'' [द्रष्टव्य-ऋषि दयानन्द स्वरचित (लिखित वा कथित) जन्मचरित्र, पृष्ठ १४ की पहली टिप्पणी]

स्पष्ट ही यहाँ १८४७ ई. गलत छपा है १८४६ ई. होना चाहिये, क्योंकि १९०३ विक्रम संवत् का ज्येष्ठ मास मई १८४६ ई. में पड़ता है।

पं. युधिष्ठिर मीमांसक जी की इस स्थल पर टिप्पणी है-''अथवा हो सकता है, इससे कुछ पहले घर से प्रस्थान किया हो।'' मीमांसक जी की इस टिप्पणी से यह विदित होता है कि ऋषि दयानन्द ने अपने गृह ग्राम टंकारा का त्याग मई १८४६ से पहले ही कर दिया था। पं. भीमसेन शास्त्री (कोटा) का यह मानना है कि उन्होंने अप्रैल मास १८४६ ई. में ही गृह-त्याग कर दिया था।

इसका कारण यह है कि ऋषि ने अपने पूना प्रवचन में कहा है-''वहाँ से अहमदाबाद के समीप कोटकांगड़े नामी गाँव में आया,...इस स्थान पर मैं ३ महीने रहा था।'' (महर्षि दयानन्द सरस्वती की आत्मकथा, पृष्ठ ६६, सम्पादक-डॉ. भवानीलाल भारतीय, प्रकाशक विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, २००४ ई.)

ऋषि द्वारा कोटकांगड़ा में स्पष्टत: ३ तीन मास के निवास का उल्लेख करने के कारण ही श्रीकृष्ण शर्मा भी कोटकांगड़ा में ऋषि के निवास की अवधि ३ मास तक मानते हैं। श्रीकृष्ण शर्मा के शब्द हैं-''महर्षि ने स्वयं अपने पूना के १५ वें भाषण में जैसा कि बतलाया था उसके

अनुसार वे ३ मास तक कोटकांगड़ा के मन्दिर में ठहरे थे यानी चैत्री संवत् १९०३ (कार्तिकी संवत् १९०२) के भाद्रपद आश्विन तथा कार्तिक मास की पूर्णिमा तक वे कोटाकांगड़ा के मन्दिर में ही थे।'' [द्रष्टव्य-महर्षि दयानन्द (मूलशंकर) सरस्वती का वंश परिचय-श्रीकृष्ण शर्मा, पृष्ठ २८]

ऐसी स्थिति में ऋषि का अपने गाँव टंकारा से निकलकर सिद्धपुर के कार्तिकी मेले में अपने पिताजी द्वारा पकड़ा जाना १२-१५ दिनों के अन्दर न होकर (जैसा कि आदित्यमुनि मानते हैं) साढ़े चार मास या पाँच मास के बाद की घटना है। अब आदित्यमुनि के पास इस बात का क्या उत्तर है कि टंकारा त्याग के बाद सायला में एक या डेढ़ मास तथा कोटकांगड़े में तीन मास कुल मिलाकर चार साढ़े चार या लगभग पाँच मास निवास की अवधि न मानकर टंकारा त्याग के बाद १०-१२ दिन के अन्दर ही सिद्धपुर मेले (कार्तिकी पूर्णिमा) में पहुँचना वे क्यों मानते हैं? क्या यह ऋषि दयानन्द के स्पष्ट कथन का और ऋषि-जीवनी के सभी लेखकों के मत का विरोध नहीं है?

आदित्यमुनि जी की मुसीबत हम समझते हैं। आज से ३० वर्ष पहले उन्होंने लिखा था कि स्वामी जी ने टंकारा के अपने गृह का त्याग १९०२ विक्रमी में किया था। इसके उत्तर में जब हमने लिखा कि स्वामी जी लिखित आत्मकथा में उनके गृह-त्याग का वर्ष १९०३ विक्रम संवत् लिखा है। अत: स्वामीजी का गृह-त्याग १९०२ विक्रम संवत् में नहीं हो सकता। मेरे आक्षेप से बचने के लिए उन्होंने अब १९०३ विक्रम संवत् तो माना किन्तु चैत्री उत्तरीय विक्रम संवत् १९०३ न मानकर द्राविड़ प्राणायाम करके गुजराती कार्तिकी संवत् १९०३ मान लिया। 'ताड़ से गिर कर खजूर पर अटके' वाली कहावत आदित्यमुनि पर चरितार्थ हो गई। सत्य को स्वीकार करने के लिये हठ और दुराग्रह को त्यागना पड़ता है। लेकिन इस द्रविड़ प्राणायाम से उनकी मुसीबत कम होने वाली नहीं है। क्योंकि ऐसी स्थिति में स्वामीजी का यह लेख मिथ्या हो जाएगा कि 'कोटकांगड़ा में वे ३ तीन मास रहे थे।' साथ ही महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि १९०३ विक्रम संवत् (चैत्री) न मानकर कार्तिकी संवत् १९०३ गृह-त्याग का वर्ष स्वामीजी को अभीष्ट है इसमें क्या प्रमाण है? १९०३ विक्रम संवत् (चैत्री) मानकर ही स्वामी जी के सायला और कोटकांगड़ा में क्रमश: १ एक मास और ३ तीन मास की निवास-अवधि संगत हो सकती है। स्वामीजी ने १९०३ विक्रमी संवत् (चैत्री) को ही लक्ष्य कर लिखा है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण स्वामीजी की आत्मकथा का यह वक्तव्य है-''संवत् १९१२ विक्रम समाप्त हुआ। १९१३ विक्रम अगले पाँच मास में कानपुर वा प्रयाग के मध्यवर्ती अनेक प्रसिद्ध स्थान मैंने देखे। भाद्रपद के प्रारम्भ में मिर्जापुर पहुँचा। वहाँ एक मास से अधिक विन्ध्याचल अशोल जी के मन्दिर में निवास किया। असूज (आश्विन) के आरम्भ में काशी पहुँचा।'' (महर्षि दयानन्द सरस्वती की आत्मकथा, पृ. ३०-३१) जाहिर है कि चैत्र मास के पाँच मास बाद भाद्रपद मास आता है। ऋषि विक्रम १९१३ के भाद्रपद में मिर्जापुर पहुँचे। वहाँ एक मास से अधिक विन्ध्याचल में रहकर आश्विन के प्रारम्भ में काशी पहुँचे। यदि ऋषि को अपनी 'आत्मकथा' में कार्तिकी संवत् अभीष्ट होता तो ऐसा लेखन वे न करते। क्योंकि कार्तिक के पाँच मास बाद भाद्रपद का प्रारम्भ नहीं होता। यही कारण है कि पं. लेखराम, पं. देवेन्द्रनाथ, पं. भगवद्दत्त, पं. युधिष्ठिर मीमांसक, डॉ. भारतीय, प्रो. राजेन्द्र जिज्ञासु, प्रो. दयालभाई आर्य, श्री भावेश मेरजा आदि सभी ऋषि-जीवनी के गवेषक ऋषि की आत्मकथा में दिये विक्रम संवत् का तात्पर्य उत्तरी चैत्र शुक्लपक्ष से प्रारम्भ होने वाले विक्रम संवत् को ही मानते हैं कार्तिक शुक्ल से प्रारम्भ होने वाले गुजराती संवत् को नहीं। यहाँ तक कि श्रीकृष्ण शर्मा, जिन्हें अपना गुरु बनाकर आदित्यमुनि जी स्वामीजी का जन्म भाद्रपद मास १८८१ कार्तिक विक्रम संवत् अर्थात् चैत्री विक्रम संवत् १८८२ सिद्ध करना चाहते हैं। वे (श्रीकृष्ण शर्मा) भी सायला और कोटकांगड़ा के निवास की अवधि पं. लेखराम जी तथा अन्यों के समान ही मानते हैं।

वस्तुस्थिति यह है कि श्रीकृष्ण शर्मा और आदित्यमुनि दोनों स्वामी दयानन्दजी को मिथ्यावादी मानते हैं, फर्क केवल यह है कि श्रीकृष्ण शर्मा स्वामी जी का गृह-त्याग चैत्री संवत् १९०२ विक्रमी मानते हैं जबकि ऋषि दयानन्द का गृह-त्याग चैत्री संवत् १९०३ विक्रमी में है। इस स्थल पर श्रीकृष्ण शर्मा स्वामीजी को मिथ्यावादी बतलाते हैं।

पहले आदित्यमुनि जी भी ऐसा ही मानते थे। मेरी आलोचना के बाद उन्होंने स्वामी जी की आत्मकथा में १९०३ विक्रम संवत् का उल्लेख कार्तिक शुक्ला से प्रारम्भ होने वाला संवत् मानकर किसी प्रकार संगति लगाने का प्रयास किया। किन्तु उनके इस प्रयास से दूसरे स्थल पर कोटकांगड़ा में ऋषि के निवास की अवधि तीन मास नहीं बन सकती, अतः इस स्थल पर आदित्यमुनि के अनुसार स्वामीजी का लेखन मिथ्या हो गया। इसी को कहते हैं-

इतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्टः नैको लब्धः न चापरः

आदित्यमुनि-''अब ऋषि की जन्मकुण्डली के परीक्षणोपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि ऋषि ने अपना जन्म संवत् १८८१ विक्रम तो गुजराती ही बताया था क्योंकि वही उनके माता-पिता ने उनके बचपन से उन्हें बता रखा था पर जब वे कार्यक्षेत्र में उतरे तो उत्तर भारत में होने पर वे उत्तर भारतीय संवत् और दक्षिण भारत में होने पर दक्षिण भारतीय गुजराती संवत् का ही अपने पत्र-व्यवहारादि में उल्लेख करते थे। यह उनके पत्र-व्यवहार पर कार्य करने वाले स्व. पं. युधिष्ठिर मीमांसक जी ने भी स्वीकार किया था।'' (स्वामी दयानन्द सरस्वती की वास्तविक जन्मतिथि-आदित्यमुनि वानप्रस्थ, २०१८ ई. पृष्ठ २१)

समीक्षा- ऋषि दयानन्द उत्तर भारत में होने पर उत्तर भारतीय संवत् और दक्षिण भारत में होने पर दक्षिण भारतीय गुजराती संवत् का ही अपने पत्र-व्यवहारादि में उल्लेख करते हैं, यदि यह माना जाए तब तो आत्मकथा की तीन किश्तों में लिखकर भेजने के समय वे उत्तर भारत के बरेली नगर में थे। अतः आत्मकथा में विक्रम संवत् उत्तर भारत में प्रचलित चैत्री विक्रम संवत् ही है दक्षिण भारतीय गुजराती संवत् नहीं। हम पूर्व में यह दिखा आये हैं कि गृह-त्याग का विक्रम संवत् १९०३, चैत्री विक्रम संवत् १९०३ मानकर ही संगत होता है दक्षिण गुजराती कार्तिकी संवत् को मानकर नहीं। यह भी नहीं माना जा सकता कि स्वामी जी ने अपना जन्म संवत् १८८१ विक्रमी कार्तिकी संवत् के अनुसार लिखा और गृह-त्याग का संवत् १९०३ उत्तर भारतीय चैत्री संवत् को मानकर लिखा। क्योंकि अर्धजरतीय न्याय वाली और घालमेलवाली उत्तरी और दक्षिणी का प्रयोग ऋषि क्यों करते? जबकि वे उत्तर भारत के एक नगर बरेली में बैठकर आत्मकथा को लिख रहे हैं। जहाँ तक पं. युधिष्ठिर मीमांसक की बात है वहाँ यह निश्चयेन कहा जा सकता है कि श्री मीमांसक जी ने यह कहीं नहीं लिखा है कि ऋषि की आत्मकथा में संवत् का उल्लेख दक्षिणी गुजराती संवत् के अनुसार किया गया है। उन्होंने अपनी पुस्तक 'महर्षि दयानन्द सरस्वती का भ्रातृवंश और स्वसृवंश' में पृ. १५ पर स्पष्ट लिखा है कि ''इनका जन्म संवत् १८८१ के अन्त में हुआ था।'' यह चैत्री विक्रम संवत् १८८१ का ही संकेत है। यदि यह कथन पं. लाभशंकर शास्त्री का ही माना जाये तो भी यह स्पष्ट है कि लाभशंकर शास्त्री ने स्वयं दक्षिणी गुजराती होते हुए भी उत्तरी चैत्री विक्रमी संवत् को ही सत्य मानकर यह वाक्य लिखा और मीमांसक जी ने यहां कोई टिप्पणी न देकर लाभशंकर शास्त्री के इस वाक्य से सहमति ही प्रकट की है। पं. भगवद्दत्त द्वारा सम्पादित 'ऋषि दयानन्द स्वरचित (लिखित वा कथित) जन्म चरित्र' में भी पं. मीमांसक जी की टिप्पणी भी उत्तर भारत में प्रचलित विक्रमी संवत् को ही मान्यता प्रदान करती है। ऋषि की आत्मकथा में लिखित संवत् की संगति कोई भी व्यक्ति दक्षिणी गुजराती संवत् मानकर नहीं लगा सकता, यह मेरी चुनौती है। अच्छा तो यह रहेगा कि आदित्यमुनि मेरी चुनौती स्वीकार कर कहीं भी दिल्ली, गुरुकुल रेवली (सोनीपत) या परोपकारिणी सभा, अजमेर में मुझसे शास्त्रार्थ कर लें। दोनों पक्षों के वक्तव्य टेप कर लिए जाएँ और बाद में पुस्तकाकार प्रकाशित कर देश के आर्य विद्वानों और इतिहासज्ञों से सम्मति माँगा ली जाए, दूध का दूध और पानी का पानी हो जाएगा। क्या आदित्यमुनि को मेरी चुनौती स्वीकार है? आदित्यमुनि जी ने अपने लघु लेख और ३६ पृष्ठों की अपनी पुस्तक में जो कुछ भी लिखा है उसमें अधिकांश पूरी तरह मिथ्या है। ऋषि की जन्मकुण्डली की बात ही गप्प है, यह सब श्रीकृष्ण शर्मा की करामात है। ऋषि-जीवनी को विकृत करने वाले वे वही लोग हैं जो अपनी प्रसिद्धि के लिए असत्य और कपोल-कल्पनाओं का सहारा लेते हैं। ऐसे लोगों में से कुछ नाम ये हैं-(१) जैनी जियालाल (दयानन्द छल-कपट दर्पण) (२) टहलराम गिरधारी दास

(विश्वासघात) (३) मेधारथी (या मेधार्थी) स्वामी (४) पं. लाभशंकर शास्त्री (५) श्रीकृष्ण शर्मा (६) पं. दीनबन्धु शास्त्री और (आदित्यपाल सिंह या आदित्यमुनि)।

आदित्यमुनि जी जिस श्रीकृष्ण शर्मा द्वारा प्रस्तुत 'जन्मकुण्डली' की बात करते हैं, वे महागप्पी व्यक्ति थे। ऋषि दयानन्द की प्रारम्भिक जीवनी के अनेक प्रसंगों में अपनी ऊहा से उन्होंने कैसी-कैसी गप्पें मारी हैं, इसके दिग्दर्शनार्थ पाठकों को दयाल मुनि आर्य द्वारा लिखित तथा भावेश मेरजा द्वारा सम्पादित **ऋषि की प्रारम्भिक जीवनी** (प्रकाशक-सत्यार्थ प्रकाशन न्यास, १४२५, सैक्टर-१३, अर्बन एस्टेट, कुरुक्षेत्र (हरियाणा) वर्ष २०१५ ई.) पुस्तक को पूर्ण मनोयोग से पढ़ना चाहिए। विशेषत: श्रीकृष्ण शर्मा द्वारा उद्‌भावित गप्पों और कपोल कल्पनाओं के विषय में इस पुस्तक के (पृष्ठ) ४६,४७,६५,६६,६८,६९,७३,७४,७५,७६,७७,७८,७९,८०, ८१,८२,८३,१०२,१०३,१०४ तथा १०५ पृष्ठ देखने योग्य हैं।

श्रीकृष्ण शर्मा ने अपनी पुस्तक 'महर्षि दयानन्द (मूलशंकर) सरस्वती का वंश परिचय' के पृष्ठ ६ पर लिखा है-''सन् १८७९ के नवम्बर दिसम्बर के 'थियोसोफिस्ट' नामक आंग्ल मासिक पत्र के अंकों में उनका [स्वामी दयानन्द का] लिखा हुआ जो लेख छपा हुआ था उसमें उन्होंने वास्तव में अपने पूर्वाश्रम सम्बन्धी घटनाओं का उल्लेख बड़े ही संक्षेप में किया है।''

समीक्षा- श्रीकृष्ण शर्मा के उक्त लेखन से उनकी जानकारी की पोल खुल जाती है। क्योंकि सच्चाई यह है कि स्वामीजी की 'आत्मकथा' 'दि थियोसोफिस्ट' के अक्टूबर १८७९, दिसम्बर १८७९ तथा नवम्बर १८८० ई. में छपी थी।

श्रीकृष्ण शर्मा ने अपनी पुस्तक 'महर्षि दयानन्द (मूलशंकर) सरस्वती का वंश परिचय' के प्रकाशनादि का समय इस प्रकार लिखा है-दयानन्दाब्द १४१, विक्रम संवत् २०२०, ईस्वी सन् १९६४।

समीक्षा-२०२० विक्रम संवत् और १९६४ ई. में श्रीकृष्ण शर्मा द्वारा अभिमत दयानन्दाब्द १४१ कैसे होगा?

श्रीकृष्ण शर्मा द्वारा उत्पन्न की गई भ्रान्तियों का निराकरण-

पं. श्रीकृष्ण शर्मा-(१) ''महर्षि (मूलशंकर) की जो जन्मकुण्डली उनके पारिवारिक जनों से प्राप्त हुई है उसके अनुसार महर्षि की जन्मतिथि भाद्रपद शुक्ल नवमी ही है।...महर्षि की जन्म-कुण्डली के अनुसार उनका जन्म कार्त्तिकी संवत् १८८१ भाद्रपद शुक्ल नवमी बुधवार को प्रात:काल ३ बजकर ३० मिनट पर मूल नक्षत्र, धनु राशि में हुआ था।''...महर्षि की जन्म-कुण्डली निम्न प्रकार है-...

इसके अनुसार महर्षि की जन्म तारीख १९/०९/२५ की मध्यरात्रि के पश्चात् ता. २०/०९/२५ के प्रात:काल के पूर्व ३ बजकर ३० मिनट पर है।

समीक्षा- श्रीकृष्ण शर्मा द्वारा प्रस्तुत जन्मकुण्डली कपोलकल्पित और अप्रामाणिक है। इसके निम्न हेतु हैं-

पं. उदयवीर शास्त्री इस सम्बन्ध में लिखते हैं-''यह कुण्डली राजकोट निवासी पं. श्रीकृष्ण शर्मा को कहाँ से प्राप्त हुई? इसका उल्लेख शर्माजी ने अपने लेख में कहीं नहीं किया। जन्मकुण्डली प्राप्ति का आधार प्रामाणिक होना चाहिए। इसके अभाव में जन्मकुण्डली की प्रामाणिकता सन्देह कोटि में आ सकती है।''

डॉ. भारतीय को भी इस कथित 'जन्मकुण्डली' पर सन्देह हुआ है। अत: उन्होंने लिखा-''परन्तु उन्होंने यह नहीं बताया कि यह कुण्डली उन्हें कहाँ से प्राप्त हुई।''

पं. श्रीकृष्ण शर्मा के अनुसार ऋषि दयानन्द ने अपनी 'आत्मकथा' में जो-'संवत् १८८१ के वर्ष में मेरा जन्म...हुआ था' लिखा है, उसका तात्पर्य गुजरात में प्रचलित कार्त्तिकी संवत् १८८१ से है। गुजराती संवत् कार्त्तिकी शुक्ल से प्रारम्भ होकर आश्विन कृष्ण अमावस्या को समाप्त होता है। क्योंकि गुजराती मास अमावस्यान्त होता है। अत: स्वामी दयानन्द का जन्म कार्त्तिकी संवत् के अनुसार १८८१ विक्रमी में भाद्रपद शुक्ला नवमी अर्थात् उत्तर भारत में प्रचलित विक्रमी संवत् (चैत्र शुक्ल से प्रारम्भ होने वाला) १८८२ विक्रमी में भाद्रपद शुक्ला नवमी तदनुसार २० सितम्बर १८२५ ई. को हुआ था। इस प्रकार ऋषि दयानन्द की 'आत्मकथा' में प्रयुक्त संवत् का तात्पर्य कार्त्तिकी संवत् से समझना चाहिए। किन्तु श्रीकृष्ण शर्मा स्वयं इस विचार की

संगति 'ऋषि-आत्मकथा' में सर्वत्र नहीं लगा सके। उदाहरणार्थ स्वामीजी की 'आत्मकथा' में लिखित वाक्य- 'फिर गुपचुप संवत् १९०३ के वर्ष घर छोड़ के सन्ध्या समय भाग उठा' का तात्पर्य शर्माजी के अनुसार-"उत्तर भारत में प्रचलित चैत्री संवत् १९०३ विक्रमी में ही स्वामीजी ने गृहत्याग किया था" है। अर्थात् श्रीकृष्ण शर्मा के अनुसार स्वामीजी ने अपनी आत्मकथा में अपना जन्म १८८१ संवत् कार्त्तिकी (अर्थात् १८८२ संवत् चैत्री) माना, किन्तु गृहत्याग संवत् १९०३ चैत्री (अर्थात् संवत् १९०२ कार्त्तिकी) में किया।"

इस प्रकार श्रीकृष्ण शर्मा ने ऋषि की कपोलकल्पित जन्मकुण्डली को प्रस्तुत कर ऊटपटांग निष्कर्ष निकाला।

श्रीकृष्ण शर्मा ने ऋषि दयानन्द के जीवन-चरित में अनेक भ्रमों को प्रवेश कराने के लिए सुनियोजित रीति से प्रयास किया है। श्री शर्मा ने ऋषि दयानन्द की माता, बहिन और भाई, चाचा आदि के कल्पित नाम प्रचारित करने के लिए छल, प्रपंच, असत्य तथा पाखण्ड का सहारा लिया। प्रो. दयालभाई ने लिखा है कि श्रीकृष्ण शर्मा ने स्वामी दयानन्द की माता का नाम 'अमृता बाई' के समर्थन में यह लिखा कि यह नाम महर्षि के बालसखा इब्राहीम ने मुझे बताया, परन्तु यह बात उन्होंने तब लिखी जब इब्राहीम का देहान्त हो गया था। इसी प्रकार श्री शर्मा ने यह लिखा कि 'स्वामीजी के छोटे भाई की पत्नी मोंघीबाई के रिश्तेदार श्री बालाशंकर भीमजी भाई दवे ने भी स्वर्गीय पं. देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय तथा टंकारा जन्म शताब्दी के मन्त्री पं. विजयशंकर मूलशंकर को स्वामीजी की माता का नाम 'अमृता बाई' ही बताया था।' प्रो. दयालजी भाई श्रीकृष्ण शर्मा के कथन की निस्सारता के सम्बन्ध में लिखते हैं कि देवेन्द्रबाबू ने स्वयं लिखा है कि "मूलजी (ऋषि दयानन्द) की जननी के विषय में हम कुछ नहीं जानते।" पं. विजयशंकर ने अपने ग्रन्थ-'दयानन्द जन्म-स्थान निर्णय' में इस सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा। साथ ही पं. विजयशंकर की मृत्यु के बाद श्रीकृष्ण शर्मा ने यह गप्प लिख दिया कि 'पं. विजयशंकर को ऋषि की माता का नाम मालूम था पर उन्होंने कहीं नहीं लिखा।' अतः यह सिद्ध है कि ऋषि दयानन्द के जीवन-चरित से सम्बन्धित विविध प्रसंगों में अनैतिहासिक तथा अप्रामाणिक घटनाओं, नामों तथा अभिलेखों को प्रक्षेपित करने का षड्यन्त्र श्रीकृष्ण शर्मा ने जानबूझकर किया। इस प्रकार श्रीकृष्ण शर्मा की इस दुष्प्रवृत्ति को लक्ष्य करके प्रो. दयालजी भाई लिखते हैं-"यदि शर्माजी की कल्पना शक्ति प्रबल हो जाती तो वे स्वामीजी की 'आत्मकथा' के इस वचन-'मेरे पिता ने मुझसे कहा कि अगले वर्ष में तेरा विवाह भी होगा, क्योंकि लड़की वाले नहीं मानते' के आधार पर मूलशंकर की वाग्दत्ता लड़की का नाम, उसके पिता और गाँव का नाम आदि भी कल्पित कर लेते और आर्यसमाज में इन नामों को आँख मूंदकर स्वीकार कर लिया जाता। यह हमारे लिए दुर्भाग्य की बात है कि ऋषि जीवनी पर जिसने जैसा चाहा उसने वैसा लिख दिया। इसीलिए किसी ने संशोधन के नाम पर, तो किसी ने अपनी महत्त्वाकांक्षा की पूर्त्ति के लिए, तो किसी ने अपने अज्ञानवश तथा किसी अन्य ने अपनी धारणा अथवा कल्पना के बल पर अप्रामाणिक, असत्य और अविश्वसनीय बातों को जीवनी में मिला दिया है। इस पर किसी का नियन्त्रण भी नहीं है।" ('वेदवाणी' का 'दयानन्द विशेषांक' (३) जनवरी १९८६ ई. पृ. ४१)।

अतः स्पष्ट है कि ऋषि-जीवन से सम्बन्धित नाना प्रकार के गप्पों को उद्घाटित करने का शौक श्रीकृष्ण शर्मा के स्वभाव में रहा है। इसी परम्परा में उन्होंने ऋषि दयानन्द की काल्पनिक जन्मकुण्डली स्वयं बनाकर या किसी से बनवाकर ऋषि-जीवनी में प्रक्षेपित करने का षड्यन्त्र रचा और वह भी तब जब सार्वदेशिक सभा की धर्मार्य-सभा ने उनसे मिलकर उनकी काल्पनिक बातों को न मानकर ऋषि दयानन्द की जन्मतिथि फाल्गुन कृष्णा दशमी १८८१ विक्रमी की घोषणा कर दी।

सार्वदेशिक धर्मार्य्य सभा के भूतपूर्व मन्त्री आचार्य विश्वश्रवाः व्यासजी ने पं. श्रीकृष्ण शर्मा के सम्बन्ध में लिखा है-"महर्षि की जन्मतिथि के सम्बन्ध में सार्वदेशिक धर्मार्य्य सभा में ता. २५/०५/१९५६, ता. २७/०१/१९५७, ता. ०८/०६/१९५८, ता. २३/०७/१९६० इतने काल तक गम्भीरतापूर्वक विचार हुआ। उन दिनों श्री आत्मानन्दजी सरस्वती सार्वदेशिक धर्मार्य्य-सभा के प्रधान थे और मैं स्वयं धर्मार्य्य-सभा का प्रधानमन्त्री था। हमने धर्मार्य्य-सभा

के समस्त आर्यजगत् के आर्य विद्वानों के अतिरिक्त पं. विजयशंकर जी बम्बई आदि-आदि अनेक विशिष्ट व्यक्तियों को भी विचारार्थ बुलाया। पं. श्रीकृष्ण शर्मा से मैं स्वयं मिला, उनका ज्ञान इस सम्बन्ध में विशेष नहीं था और न वे विशेष शिक्षित व्यक्ति ही थे। हर विषय में उनकी अपनी अलग ही कल्पनाएँ थीं। हमारे सामने विभिन्न स्रोतों से प्राप्त पाँच जन्मतिथियाँ थीं...महर्षि की आत्मकथा में वर्णित महर्षि की स्वलिखित जीवन घटनाओं को ज्योतिष के आधार पर विचार करने पर जो तिथि निश्चित हुई, वह पर्याप्त प्रतीक्षा के पश्चात् सार्वदेशिक सभा की अन्तरंग बैठक ता. ०२/०४/१९६७ में घोषित की गई, वह इस प्रकार है-

ऋषि की जन्मतिथि संवत् १८८१ फाल्गुन बदि दशमी (१२ फरवरी सन् १८२५ शनिवार)।'' अत: हम श्रीकृष्ण शर्मा द्वारा ऋषि की काल्पनिक जन्मकुण्डली को प्रस्तुत करने की भर्त्सना करते हैं। इस सम्बन्ध में ऋषि-जीवनी का प्रत्येक विवेकशील पाठक प्रो. दयाल भाई आर्य की इन पंक्तियों से सहमत होगा-''जब तक विश्वसनीय जानकारी न मिल जाए, तब तक कुछ लिखना ठीक नहीं, क्योंकि ऋषि जीवनी जैसे पवित्र विषय में एक और विवाद खड़ा करना गुरुद्रोह के तुल्य है।'' ('वेदवाणी' का दयानन्द विशेषांक (३) जनवरी १९८६ ई. पृ. ४५)।

पं. श्रीकृष्ण शर्मा द्वारा प्रस्तुत जन्मकुण्डली के अप्रामाणिक होने का सबसे प्रबल प्रमाण यह है कि ऋषि दयानन्द ने अपनी 'आत्मकथा' में जन्म संवत् १८८१ का उल्लेख उत्तर भारत में प्रसिद्ध चैत्री संवत् की दृष्टि से किया है। जबकि श्रीकृष्ण शर्मा की जन्मकुण्डली के अनुसार स्वामीजी का जन्म कार्त्तिकी गुजराती संवत् १८८१ अर्थात् उत्तर भारतीय चैत्री संवत् १८८२ है। इस विषय में हम स्वामीजी की 'आत्मकथा' से सम्बद्ध अंश उद्धृत करते हैं-''संवत् १९१२ विक्रम समाप्त हुआ। १९१३ वि. अगले पाँच मास में कानपुर व प्रयाग के मध्यवर्त्ती अनेक प्रसिद्ध स्थान मैंने देखे। भाद्रपद के प्रारम्भ में मिर्जापुर पहुँचा।''

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि ऋषि दयानन्द ने अपनी 'आत्मकथा' में विक्रम संवत् का प्रयोग उत्तर भारत में प्रचलित (चैत्र शुक्ला प्रतिपदा से प्रारम्भ होने वाला) विक्रमी संवत् की दृष्टि से किया है, गुजरात में प्रचलित कार्त्तिकी विक्रमी संवत् की दृष्टि से नहीं। क्योंकि १९१२ संवत् के चैत्र कृष्णपक्ष की समाप्ति पर अगले पाँचवें मास में भाद्रपद का आगमन उत्तरीय विक्रम संवत् में ही होता है। ऋषि दयानन्द ने अपनी आत्मकथा में उत्तरीय विक्रम संवत् का ही प्रयोग सभी स्थलों पर किया है, इस तथ्य को सभी ऋषि जीवन-चरित के गवेषक और पाठक मानते हैं जो हस्तामलकवत् स्पष्ट है। इस परिप्रेक्ष्य में पं. श्रीकृष्ण शर्मा द्वारा खोजी गई जन्मकुण्डली पूर्णतया जाली सिद्ध हो जाती है।

यदि वस्तुत: श्रीकृष्ण शर्मा को स्वामीजी की जन्मकुण्डली उनके पारिवारिक जनों से मिली होती, जिसका कि उन्होंने दावा किया है तो वे अपने इस अनुपम अनुसन्धान के कारण अमर हो जाते। उस जन्मकुण्डली को सुरक्षित रखते, तत्कालीन आर्य विद्वानों को दिखाते और रासायनिक जाँच द्वारा जन्मकुण्डली के कागज और स्याही को स्वामीजी के समकालीन सिद्ध करते, किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। पता नहीं अब यह तथाकथित जन्मकुण्डली कहाँ है? स्वामीजी के पारिवारिकजनों (पोपटलाल प्रभृति) को स्वामीजी के सम्बन्ध में जितनी भी बातें मालूम थीं वे सब बातें वे लोग बता गये हैं। यदि उनके पास जन्मकुण्डली होती तो पं. देवेन्द्रनाथ जी मुखोपाध्याय, पं. विजयशंकर प्रभृति विद्वज्जन अवश्य प्राप्त किये होते।

पं. श्रीकृष्ण शर्मा- (२) ''मोर्वी के नगरसेठ स्व. सेठ श्री सुन्दरजी शिवजी के पुराने कागजों में भी देखा गया है कि कार्त्तिकी संवत् १८८१ भाद्रपद शुक्ल चतुर्दशी को उनकी तरफ से टंकारा महाल के वहीवटदार (रेवेन्यु ऑफिसर) के घर पुत्र-जन्म के उपलक्ष्य में भेंट सौगात (झबला के रूप में) ११६) रुपये का सामान भेजा गया था। मेरे ख्याल से उक्त दिन ही महर्षि (मूलशंकर) की छठी का था।''

समीक्षा- श्रीकृष्ण शर्मा ने काल्पनिक जन्मकुण्डली के समान ही मोर्वी के सेठ की बही में सौगात भेजने की राशि का उल्लेख मिथ्या ही किया है। क्योंकि हम ऊपर यह निरूपित कर चुके हैं कि स्वामीजी की जन्मतिथि का

वर्ष संवत् १८८१ है १८८२ नहीं। अत: संवत् १८८२ में स्वामीजी की छठी मनाने का प्रश्न ही नहीं उठता।

श्रीकृष्ण शर्मा को स्वामीजी का जन्म संवत् १८८१ को गुजराती संवत् मानने और मनवाने की सनक सवार थी। उन्हें यह ध्यान ही नहीं रहा कि स्वामीजी ने अपनी 'आत्मकथा' में स्पष्टत: संवत् का उल्लेख उत्तर भारतीय दृष्टि (चैत्र शुदि से प्रारम्भ होने वाला) से किया है गुजराती संवत् के रूप में नहीं। अत: अपनी सनक की पुष्टि में काल्पनिक जन्मकुण्डली और सेठजी की बही में छठी के दिन झबला भेजे जाने की असत्य बात को उन्होंने क्रमश: बनाया और लिखा। वस्तुत: उनके पास बही का वह पन्ना होता जिसमें स्वामीजी की छठी का उल्लेख है तो वह सुरक्षित रखते और आर्यजगत् के समक्ष प्रस्तुत करते तब उसकी रासायनिक जाँच से उसके काल का पता लगाया जाता।

वस्तुत: सबसे पहले ऋषि की जाली जन्मकुण्डली ऋषि दयानन्द के निन्दक जियालाल जैनी ने बनाई या बनवाई और उसे अपनी पुस्तक दयानन्द छल कपट दर्पण (१८९४ ई.) में छापा। पं. अखिलानन्द ने 'दयानन्द दिग्विजय' काव्य (प्रकाशन वर्ष १९१० ई.) में यही तिथि मान ली। इनके बाद टहलराम गिरधारीलाल ने अपनी पुस्तक 'विश्वासघात' में (जो १९३१ ई. में छपी) एक और कुण्डली छापकर इसी तिथि की वकालत की। इन्हीं सबसे प्रेरणा प्राप्त कर श्रीकृष्ण शर्मा ने भी ऋषि की एक दूसरी जन्मकुण्डली बनवाई और उसे १९६४ ई. में छापा। सारी जन्मकुण्डलियाँ अप्रामाणिक हैं, इन कुण्डलियों की चर्चा ऋषि दयानन्द की भगिनी प्रेमबाई के प्रपौत्र पोपटलाल कल्याणजी रावल ने कभी नहीं की। एक गप्पी का गप्प दूसरे गप्पी से कहीं मिलता है? यही हाल जन्मकुण्डली की चर्चा करने वाले जियालाल से लेकर आदित्यपाल तक ऋषि के द्रोहियों और तथाकथित भक्तों का है। वेदों पर आक्षेप और वेद की निन्दा करते-करते पेट भरा नहीं है तो ऋषि की प्रामाणिक जन्मतिथि को झुठलाने के लिये आदित्यपाल जी पिल पड़े। यदि साहस है तो इस विषय पर शास्त्रार्थ-समर में उतरिये।

नाम तब तक अमर है, तुम्हारा धर्मवीर!

सोमेश 'पाठक'

चाँद सूरज हैं जब तक फ़लक के नज़ारे,
नाम तब तक अमर है, तुम्हारा धर्मवीर।
जमीं है ये जब तक हैं जब तक सितारे,
नाम तब तक अमर है, तुम्हारा धर्मवीर।।

हुये लाख पैदा कि आगे भी होंगे,
तपस्वी भी होंगे, मनीषी भी होंगे।
है जब तक समन्दर हैं जब तक किनारे,
नाम तब तक अमर है, तुम्हारा धर्मवीर।।

बुझी ज्ञान ज्योति जलाई है तुमने,
लगन धर्म की, फिर लगाई है तुमने।
हैं जब तक खिजां और जब तक बहारें,
नाम तब तक अमर है, तुम्हारा धर्मवीर।।

एक बीहड़ को उद्यान तुमने बनाया,
यहाँ हर कली को है तुमने सजाया।
जवां हैं कि जब तक यहाँ के नज़ारे।
नाम तब तक अमर है, तुम्हारा धर्मवीर।।

न मुमकिन गिने जाएँ एहसान सारे,
थे ईश्वर के सेवक धर्मवीर प्यारे।
गिने जायें जब तक ऋषि के दुलारे,
नाम तब तक अमर है, तुम्हारा धर्मवीर।।

आँख अश्कों को यूँ ही बहाती रहेगी,
याद सबको सदा यूँ ही आती रहेगी।
कि महकेंगे जब तक भी गुल प्यारे-प्यारे,
नाम तब तक अमर है, तुम्हारा धर्मवीर।।

ऋषि उद्यान, अजमेर

शङ्का समाधान - ४६

डॉ. वेदपाल

शङ्का- यम का समानार्थी क्या है?

सत्येन्द्र आर्य, सण्डी नंगला (छ.ग.)

समाधान- किसी भी शब्द का समानार्थी जानने के लिए आवश्यक है कि उसका सही अर्थ जान लिया जाए। **'यम'** शब्द 'यम उपरमे' (भ्वादि.) धातु से निष्पन्न है, जिसका धात्वर्थ है-निवृत्ति, संयत करना, नियन्त्रित करना, दमन करना, नियन्त्रण, संयम, आत्म-नियन्त्रण,- **'शरीरसाधनापेक्षं नित्यं यत्कर्म तद्यमः'**- द्रष्टव्य- आप्टे, 'संस्कृत हिन्दी कोश' पृ. ८३० उक्त अर्थों के साथ ही-मृत्यु का देवता तथा मृत्यु का मूर्त्त रूप भी 'यम' का अर्थ है- द्र. वही पृष्ठ ८३०

सम्प्रति लोक व्यवहार में मृत्यु के देवता के लिए यम के स्थान पर 'यमराज' शब्द प्रयुक्त हो रहा है। 'यम' शब्द सामान्यतः योग के आठ अंगों-१. यम २. नियम ३. आसन ४. प्राणायाम ५. प्रत्याहार ६. धारणा ७. ध्यान ८. समाधि-

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि

- योग दर्शन २.२९ में प्रथमस्थानी यम का वाचक है।

पतञ्जलि ने यम का वर्णन निम्नवत् किया है-

"अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः"

- यो. द. २.३०

१. अहिंसा २. सत्य ३. अस्तेय ४. ब्रह्मचर्य ५. अपरिग्रह इन पाँच की यम संज्ञा है।

योगसूत्र के भाष्यकार व्यास ने यम में प्रथम स्थानी अहिंसा को यम-नियम का मूल कहा है अर्थात् यमान्तर्गत अहिंसा-सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य-अपरिग्रह तथा नियमान्तर्गत शौच-सन्तोष-तप-स्वाध्याय-ईश्वरप्रणिधान का मुख्य उद्देश्य अहिंसा की सिद्धि करना स्वीकार किया है। तद्यथा-

"तत्राहिंसा सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानामनभिद्रोहः। उत्तरे च यमनियमास्तन्मूलास्तत्सिद्धिपरतयैव तत्प्रतिपादनाय प्रतिपाद्यन्ते। तदवदातरूपकरणायैवोपादीयन्ते।"

साथ ही व्यास ने किसी पूर्वाचार्य के मत (को भी 'तथा चोक्तम्' शब्द से स्पष्ट है कि यह किसी अन्य आचार्य का मत है।) उद्धृत किया है-

"तथा चोक्तम्-स खल्वयं ब्राह्मणो यथा यथा व्रतानि बहूनि समादित्सते तथा तथा प्रमादकृतेभ्यो हिंसानिदानेभ्यो निवर्त्तमानस्तामेवावदातरूपामहिंसां करोति।"

अर्थात्- यह योगसाधक जैसे-जैसे बहुत से यमादि व्रतों का अनुष्ठान करना चाहता है। वैसे-वैसे प्रमादकृत हिंसा के कारणों से पराङ्मुख होता हुआ अहिंसा को ही अत्यन्त शुद्ध रूप में अपनाता है।

अहिंसा शब्द हिंसा से नञ् तत्पुरुष- 'न हिंसा=अहिंसा' होकर निष्पन्न हुआ है। इसका अर्थ है- हिंसा-क्षति, नुकसान, चोट, वध, हत्या, विध्वंस का विरोधी भाव, क्योंकि नञ् के छः अर्थों में विरोधिता भी है-

तत्सादृश्यं तदन्यत्वं तदल्पत्वं विरोधिता।
अप्राशस्त्यमभावश्च नञर्थाः षट् प्रकीर्त्तिता।।

इस प्रकार अहिंसा का अर्थ है- सब प्रकार से अर्थात् शरीर, वाणी और मन से सब कालों में प्राणिमात्र के प्रति पीड़ा पहुँचाने की भावना का परित्याग करना अर्थात् प्राणिमात्र के प्रति पीड़ा-कष्ट-दुःख देने की भावना से उपरत होना।

सत्य आदि यम तथा शौच आदि नियम की व्याख्या के लिए व्यासभाष्य के साथ तत्त्ववैशारदी तथा योगवार्त्तिक भी द्रष्टव्य हैं।

यद्यपि कोई शब्द सर्वांशतः किसी दूसरे शब्द का पूर्णतः समानार्थी-पर्याय नहीं होता। समानार्थी समझे जाने वाले शब्द आंशिक रूप में ही समानार्थी होते हैं। इसी प्रकार सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य-अपरिग्रह सामान्यतः तथा अहिंसा को विशेषेण यम का समानार्थी कहना सम्भव है, क्योंकि यम का अर्थ उपरत होना अहिंसा में कायिक, वाचिक और मानसिक हिंसा से उपरति के भाव का साम्य है।

वेद और ऋषि दयानन्द

पं. मदनमोहन विद्यासागर

जब हम 'वेद' को भूलकर अपने को भुला चुके थे तब ऋषिवर दयानन्द ने लुप्त ज्ञान भंडार 'वेद' पुनः संसार को दिया, इसके लिए मानव-जाति सदा ऋषि की ऋणी रहेगी। इस लेख के लेखक पं. मदनमोहन विद्यासागर जी ने ऋषि दयानन्द जी के मत से वेद की महत्ता का वर्णन किया है, पाठक इस ऐतिहासिक लेख का स्वाध्याय करके लाभ उठायें। -सम्पादक

आर्ष वाङ्मय की ऐसी मान्यता है कि सृष्टि के बनते समय, 'कविर्मनीषी', सृष्टिकर्त्ता परमात्मा ने जनमात्र के लिये 'कल्याणी वेदवाणी' का विधान किया। उन्हें अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा, इन चार ऋषियों के हृदय में स्थापित किया; **हृद्यज्ञैरादधे** (ऋग्)। इन चार ऋषियों से वेदप्रचार प्रारम्भ हुआ।

इनसे वेद चतुष्टय के ज्ञान को प्राप्त करके 'ब्रह्मा' नामक सर्वप्रथम वैदिक विद्वान् ने (**ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव**) वेदों के नियमित पठन -पाठन की परिपाटी चलाई।

इसके बाद मनु महाराज ने वेदों के सिद्धान्तों के अनुसार समाज-शास्त्र का विधान किया और 'मानव धर्मशास्त्र'- मानव धर्म संहिता या 'मनुस्मृति' की रचना की। इसमें विशेष बात यह थी कि वेदों के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था सुचारु रूप से प्रचालित की। अध्यापन का कार्य केवल 'ब्राह्मणों' को सौंपा।

कालचक्र घूमा और ज्यों-ज्यों नये-नये ग्रन्थ, ब्राह्मण, उपनिषद् आदि बनने लगे, त्यों-त्यों 'वेद' का अध्ययन कम होने लगा। पुराणकारों की दृष्टि में 'वयः' और बुद्धि में क्षीणता होने लगी। तब महर्षि वेदव्यास ने उस 'एक ही वेद ज्ञान को, जो विषय भेद से चार संहिताओं में विभक्त था तथा रचना भेद से तीन प्रकार का था, अध्ययन-अध्यापन की नई परिपाटी चलाई। वह यह कि एक-एक वेद का विशेष अध्ययन प्रारम्भ कराया। परिणामतः वेदी, द्विवेदी, त्रिवेदी, चतुर्वेदी इस प्रकार के अध्येता प्रारम्भ हो गये। इस प्रकार वेदों की रक्षा हुई।'

वेदव्यास के बाद श्री शंकर श्री कुमारिल भट्ट के समय तक कोई विशेष प्रयत्न वेदों के पठन-पाठन को सुसंगठित करने का नहीं हुआ। दौर्भाग्य से ज्ञानमार्गी श्री शंकर ने भी मूल वेदों की उपेक्षा की और अपने सारे कार्य का आधार उपनिषदें और पुराण रखे। ऐसे ही कर्मकाण्डी याज्ञिकों ने अपने कार्यों का आधार ब्राह्मण ग्रन्थ रखे थे। परिणामतः वेदों के प्रति उदासीनता रही।

उसके बाद श्री विद्यारण्य मुनि और सायणाचार्य ने वेदभाष्य करके वेदों की सुरक्षा का एक प्रयत्न किया। किया तो वेदों का भाष्य, (गीता+उपनिषद्+ब्रह्मसूत्र का नहीं) पर अद्वैत मतानुसार तथा यज्ञपद्धति को स्वीकारते हुए। दार्शनिक दृष्टि से श्री सायण शंकर के अनुयायी दिखते हैं और वेदार्थ करने में याज्ञिक सम्प्रदायानुगामी।

इस बीच वेद के सम्बन्ध में एक आन्दोलन चला था, वह था बुद्ध और महावीर का। दोनों ने इनके नाश का प्रयत्न किया।

इसके बाद ऋषि दयानन्द (१९वीं शती) के प्रादुर्भाव तक कोई उल्लेखनीय प्रयत्न वेदों के सम्बन्ध में नहीं हुआ। श्री राजा राममोहनराय ने वेदों की सर्वथा उपेक्षा की। ब्रिटिश राज होने पर यूरोप में जो संस्कृत और वेदों के सम्बन्ध में वृद्धि और अध्ययन प्रारम्भ हुए, उनका मुख्य उद्देश्य वेदों के सिद्धान्तों को इस प्रकार से विकृत और दूषित करके जनता के सामने रखना था कि इनके सम्बन्ध में घृणा का वातावरण पैदा हो और ईसाइयत की ओर झुकाव हो। इनका मुखिया था, मैक्समूलर।

अकस्मात् एक तेजस्वी महान् नक्षत्र विद्याकाश में चमका वह था ऋषि दयानन्द। उसने वेदों का उद्धार किया। विश्व के सामने उसके सच्चे स्वरूप को रखा, जो शुद्ध वैज्ञानिक था, अन्तर्मानववाद का पोषक था।

हमें ऋषि के वेद विषयक दृष्टिकोण को समझना

चाहिये। आपने अपने ग्रन्थों में वेद के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा है। ऋषि के समय भारत के विद्वानों में कुछ भ्रम थे। जैसे कि ब्राह्मण (उपनिषद् आरण्यक) भी वेद ही हैं, वेदों के पढ़ने का अधिकार स्त्री, शूद्र को नहीं है, वेद चतुष्टय कर्मकाण्ड के ग्रन्थ हैं आदि-आदि। पाश्चात्य विद्वानों ने कुछ भ्रम फैलाये थे। जैसे कि वेद ईसा से कुछ सौ वर्ष पहले बने हैं, पहले तीन 'वेद' थे, अथर्ववेद पीछे से जोड़ा गया, अथर्ववेद में जादू-टोना है आदि-आदि। ऋषि दयानन्द ने इन सबका खण्डन किया। साथ ही श्री सायण, उव्वट, महीधर आदि के विकृत भाष्यों का सप्रमाण खण्डन कर वेद का शुद्ध स्वरूप विश्व के सामने रखा। नीचे उनके ग्रन्थों से वेद-विषय में ऋषि के विचारों को सक्रम उपस्थित किया जाता है।

ज्ञान का आदिस्रोत, स्वत:प्रमाण वेद

"ऋग्, यजु:, साम, अथर्व नाम से प्रसिद्ध जो ईश्वरोक्त सत्य विद्याधर्मयुक्त वेदचतुष्टय (संहिता मात्र मन्त्रभाग) है, वह निर्भ्रान्त नित्य स्वत: प्रमाण (ऋ.भू. ७७) हैं।" इसके प्रमाण होने में किसी अन्य ग्रन्थ की अपेक्षा नहीं। इससे मनुष्यों को सत्यासत्य का ज्ञान होता है, ये सत्यार्थप्रकाशक हैं (ऋ. भू. ६९८)। सूर्य व प्रदीप के स्वरूपत: स्वत: प्रकाशक व अन्य पृथिवी आदि पदार्थों के प्रकाशक होने की तरह ये स्वयं प्रमाणस्वरूप हैं (स्व. म. २, आ. उ. र. ६५, स.प्र. ७ स. २६६, ऋ. भू. ६८९, ऋ. भू. ७७, स.प्र. ८४-८५, ऋ.द. पत्र. विज्ञा. २११-२१२, २१८)। क्योंकि-

(१) उनमें प्रतिपादित सब सिद्धान्त सार्वभौम, सार्वजनिक और सर्वकालिक हैं। वे किसी देश काल विशेष में मानव जाति के किसी विशिष्ट समुदाय के निमित्त प्रकाशित नहीं किए गए (स.प्र. २६६, ७ समु.)।

(२) मनुष्य के सर्वतोमुख विकास के साधनों के द्योतक हैं।

(३) इनमें वर्णित कोई भी सिद्धान्त, बुद्धि विज्ञान व अनुभव के विरुद्ध नहीं। ये पक्षपातशून्य भ्रान्तिरहित ज्ञान का प्रतिपादन करते हैं (भ्रान्तिनि. शता. सं. ८७७)। वेदोक्त सब बातें विद्या से अविरुद्ध हैं (स. प्र. अनुभू. ३६३)।

(४) इनमें सृष्टिक्रम, प्रत्यक्षादि प्रमाण, आप्त और पवित्रात्मा के व्यवहार से विरुद्ध कोई कथन नहीं (स. प्र., ऋ. भू.)।

(५) इनमें ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव के अनुकूल वर्णन है (स.प्र. २६०, ७ समु.)।

(६) सृष्टि के आरम्भ से लेके आज पर्यन्त ब्रह्मा, मनु, व्यास, जैमिनि, दयानन्द आदि भी आप्त होते आये हैं, वे सब वेदों को नित्य सर्वविद्यामय अर्थात् सब विद्याओं के बीज और प्रामाणिक मानते चले आये हैं।

भारत भूमि में रचित वेद भिन्न साहित्य आर्ष (ऋषि प्रणीत, आप्तोपदिष्ट) व अनार्ष (स्वार्थी धूर्त्तजन विरचित) दो प्रकार का है। (ब्रह्मा-मनु, जैमिनि से लेकर दयानन्द ऋषि पर्यन्त) आप्तोपदिष्ट (वेदों के व्याख्यान रूप) आर्ष-ग्रन्थों का आर्ष परम्परानुसार वेदानुकूलतया ही प्रमाण है। ये सब ग्रन्थ पौरुषेय होने से परत: प्रमाण हैं। इनमें यदि कहीं वेद-विरुद्ध वचन हैं, तो वे अप्रमाण हैं (स्व. म. २, स.प्र. ८४, ३ समु., ऋ. द. प. व्य. वि. १ प. सं. २४, ४२, भ्रमो. शताब्दी सं. ८५८, ऋ. भू. ५९)।

मान्य ग्रन्थ-सबसे अधिक प्रामाणिक और मानने योग्य धर्मशास्त्र तो चार वेद हैं, उनके विरुद्ध वचन चाहे किसी भी पुस्तक में पाये जायें वे मानने योग्य नहीं हो सकते। वेद-बाह्य कुत्सित पुरुषों के ग्रन्थ त्याज्य हैं। वेद सत्य अर्थ का प्रतिपादक है अत: ब्रह्मा, मनु, जैमिनि याज्ञवल्क्य से लेकर दयानन्द महर्षि पर्यन्त का मत है कि वेद विरुद्ध को न मानना और वेदानुकूल ही का आचरण करना धर्म है (स. प्र. ४१९, ११ समु., भ्रमोच्छे. ५५८-५६०, ऋ. भू. ७३, ऋ. भू. ८६९, ऋ. द. प. व्य. वि. १ प. सं. १६-१७)।

प्रक्षेप

समय-समय पर पुराने ऋषियों के नाम से स्वार्थान्ध लोगों ने आर्ष ग्रन्थों में बहुत प्रक्षेप कर दिये हैं, बहुत भाग निकाल भी दिये हैं और मिथ्यावादों से पूर्ण नये ग्रन्थ रच डाले हैं। इन प्रक्षिप्त भागों व ऐसे कपोलकल्पित अनर्थगाथा युक्त नवीन ग्रन्थों का त्यागना ही श्रेष्ठ है (ऋ. भू. ६९८, स.प्र. ८४३ समु., ७ स.प्र. ३५१,११ समु.)। ब्रह्मवैवर्त्तादि अष्टादश पुराण विषमिश्रित अन्नवत् त्याज्य हैं।

एतद्भिन्न (आर्ष व आप्तोपदिष्ट) विश्वसाहित्य को

सृष्टि के आरम्भ में पढ़ने और पढ़ाने की कुछ भी व्यवस्था नहीं थी और न कोई विद्या का ग्रन्थ ही था, इसलिये ईश्वर का वेदों का ज्ञान देना आवश्यक था।

यह ईश्वर की विद्या है। विद्या का गुण स्वार्थ और परार्थ दोनों सिद्ध करता है। परमेश्वर हमारे माता-पिता के समान हैं, हम उसकी प्रजा हैं। वह हम पर नित्य कृपा दृष्टि रखता है, सदैव करुणा धारण करता है कि सब प्रकार से हम सुख पावें। इससे ही उसने वेदों का उपदेश हमें दिया है और अपनी विद्या के परोपकार गुण की सफलता सिद्ध की है। जो परमेश्वर अपनी वेद विद्या का उपेदश मनुष्यों के लिये न करता तो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि किसी को यथावत् प्राप्त न होती, उसके बिना परम आनन्द भी किसी को न होता। जैसे उस परम कृपालु ईश्वर ने प्रजा के सुख के लिये कन्द-मूल फल और घास आदि छोटे-छोटे भी पदार्थ रचे हैं, वैसे ही सब सुखों का प्रकाश करने वाली, सब सत्य विद्याओं से युक्त वेद विद्या का उपदेश भी प्रजा के सुख के लिये वह क्यों न करता?

परतः प्रमाण

(वैदिक साहित्य अथवा आर्ष-वाङ्मय)

चारों वेदों के ४ ब्राह्मण, ६ अङ्ग, ६ उपाङ्ग, चार उपवेद और ग्यारह सौ सत्ताइस (११२७) वेदों की शाखायें जो कि वेदों के व्याख्यान रूप ब्रह्मादि महर्षियों के बनाये ग्रन्थ हैं, वे परतः प्रमाण अर्थात् वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण और जो इनमें वेद विरुद्ध वचन हैं, वे अप्रमाण हैं, (स्व.म. २)। (ऐसे ग्रन्थों का परिगणन स.प्र. ३ समु. तथा ऋ. भू. ३८९ में द्रष्टव्य है) जो कोई मनुष्य वेद और वेदानुकूल आप्त ग्रन्थों का अपमान करे, उसको श्रेष्ठ लोग जातिबाह्य कर दें। क्योंकि जो वेद की निन्दा करता है, वही नास्तिक कहाता है (स.प्र. १० स., ३४४) तथा द्र. उप. म. १०-१५६ पृ. से आगे।

पुराण- जो ब्रह्मादि के बनाये प्राचीन ऐतरेय, शतपथ, गोपथ और ताण्ड्य ब्राह्मण आदि ऋषि-मुनिकृत सत्यार्थ पुस्तक हैं, उन्हीं को पुराण, इतिहास, कल्प, गाथा और नाराशंसी कहते हैं, अन्य भागवतादि को नहीं (स्व. म. २३, आ. उ. र. ९६, ऋ. भू. ६८९ स.प्र. ३ समु. ८६) ये प्राचीन सत्य ग्रन्थ वेदों के अर्थ और इतिहासादि से युक्त बनाये गये हैं, परतः प्रमाण के योग्य हैं (ऋ. भू. ६९०)।

उपवेद- जो आयुर्वेद= वैद्यकशास्त्र, धनुर्वेद=शस्त्रास्त्र सम्बन्धी राजविद्या-राजधर्म, गान्धर्ववेद=गानविद्या और अथर्ववेद=शिल्पशास्त्र हैं, इन चारों को उपवेद कहते हैं और ये भी वेदानुकूल होने से ही प्रमाण हैं (आ. उ. र. ९६, ऋ. भू. ६९०, स.प्र. ३ समु.)।

वेदाङ्ग- जो शिक्षा= पाणिन्यादिमुनिकृत, कल्प= मन्वादिकृत, मानव= कल्पसूत्रादि तथा आश्वलायनादिकृत श्रौत सूत्रादि, व्याकरण= पाणिनि मुनिकृत अष्टाध्यायी, धातुपाठ, गणपाठ, उणादिपाठ और पतञ्जलि मुनिकृत महाभाष्य, ऋषि-दयानन्द कृत वेदांगप्रकाश, निरुक्त=यास्कमुनि कृत निरुक्त और निघण्टु, छन्द=पिङ्गलाचार्य कृत सूत्र भाष्य, ज्योतिष= वसिष्ठादि ऋषिकृत रेखागणित और बीजगणित युक्त ज्योतिष। ये छः आर्ष सनातन शास्त्र हैं, इनको वेदांग कहते हैं। ये भी परतः प्रमाण के योग्य हैं (आ. उ. र. ९८, ऋ. भू. ६९२)।

उपांग= जिनका नाम षट्शास्त्र भी है। **पहला**- मीमांसा शास्त्र= व्यास मुनि आदिकृत भाष्यसहित, जैमिनि मुनिकृत पूर्व मीमांसा शास्त्र, जिसमें कर्मकाण्ड का विधान और धर्म तथा धर्मी दो पदार्थों से सब पदार्थों की व्याख्या की है। **दूसरा**- वैशेषिक शास्त्र= यह विशेषतया धर्म-धर्मी का विधायक शास्त्र है, जो कि कणादमुनिकृत सूत्र और प्रशस्तपाद भाष्यादि व्याख्या सहित है। **तीसरा**- न्याय शास्त्र= यह पदार्थविद्या का विधायक शास्त्र है, जो कि गौतम मुनि कृत सूत्र और वात्स्यायनमुनि कृत भाष्य सहित है। **चौथा**- योगशास्त्र= जिसके द्वारा उन पदार्थों का साक्षात् ज्ञान होता है, जिनका मीमांसा, वैशेषिक तथा न्यायशास्त्र से श्रवण तथा मनन के द्वारा आनुमानिक निश्चय होता है, जो पतंजलि मुनिकृत सूत्र और व्यास मुनिकृत भाष्य सहित है। **पाँचवा**- सांख्यशास्त्र= जिसके द्वारा प्रकृति आदि तत्त्वों की गणना होती है और उनका आत्मा से विवेक-ज्ञान होता है। जो कपिलमुनिकृत सूत्र और भागुरिमुनिकृत भाष्यसहित है। **छठा**- वैदिकशास्त्र=जो कि ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य और बृहदारण्यक ये दश उपनिषद् तथा व्यासमुनिकृत सूत्र जो कि बौधायनवृत्त्यादि व्याख्यासहित हैं। ये छः वेदों के उपांग कहाते हैं और ये भी

परतः प्रमाण के योग्य हैं (आ. उ. र. ९९, ऋ. भू. ६९२-६९३, स.प्र. ३ समु.)।

स्मृति= वेदानुकूल आप्तोक्त मनुस्मृत्यादि शास्त्र (स. प्र. ६२, ३ समु-२१२, षष्ठ समु., स. प्र. ३४४, १० समु.+स.प्र. ४ स. १५२, ३ स-८५) द्र. उप. मं. ८-१२९-१३०। यह मनुस्मृति सृष्टि के आदि में बनी है (स. प्र. ११ समु.)।

अन्य आर्ष ग्रन्थ- वेदोद्धारक सत्यधर्म प्रचारक योगीश्वर परमहंस महर्षि दयानन्द विरचित समस्त ग्रन्थ भी सत्यार्थ के प्रकाशक होने से और वेदानुकूल होने से परतः प्रमाण के योग्य हैं। इनमें से सत्यार्थप्रकाश सर्वाधिक मान्य पुस्तक है, विश्वविद्याओं का भण्डार है, सन्मार्ग प्रदर्शक है।

वेदों के चार काण्ड

वेदों का मुख्य तात्पर्य परमेश्वर ही के प्राप्त कराने और प्रतिपादित करने में है (स. प्र. ८३, ऋ. भू. २१०)। इस लोक और परलोक के व्यवहारों के फलों की सिद्धि और यथावत् उपकार करने के लिए सब मनुष्यों को वेदों के विज्ञान, कर्म, उपासना और ज्ञान इन चार विषयों के अनुष्ठान में पुरुषार्थ करना (ऋ. भू. २६१) चाहिये। क्योंकि इससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि होती है और यही मनुष्य-देह धारण करने का फल है (ऋ. भू. ९८-९९, १४३)। उ. उप. मं. ४-पृ. ३९, यहाँ तीन काण्ड लिखे हैं।

(१) विज्ञान काण्ड- उसको कहते हैं कि सब पदार्थों का यथार्थ जानना अर्थात् परमेश्वर से लेके तृणपर्यन्त पदार्थों का साक्षात् बोध होना और उनसे यथावत् उपयोग लेना व करना। यह विषय इन चारों में भी प्रधान है, क्योंकि इसी में वेदों का मुख्य तात्पर्य है। परिणामतः विज्ञान दो प्रकार का है-

(क) परमेश्वर का यथावत् ज्ञान और उसकी आज्ञा का बराबर पालन करना।

(ख) उसके रचे हुए सब पदार्थों (=प्राकृतिक वस्तुओं) के गुणों को यथावत् विचार करके उनसे कार्य सिद्ध करना अर्थात् कौन-कौन से पदार्थ किस-किस प्रयोजन के लिए रचे हैं, इसका जानना।

(२) कर्मकाण्ड- यह सब क्रिया प्रधान ही होता है। इसके बिना विद्याभ्यास और ज्ञान पूर्ण नहीं हो सकते। क्योंकि बाह्य व्यवहार तथा मानस व्यवहार का सम्बन्ध बाहर और भीतर दोनों के साथ होता है (ऋ. भू. १००-१०२, १४१)। वह अनेक प्रकार का है, किन्तु उसके दो मुख्य भेद हैं-

एक- परमार्थ मार्ग। इससे परमार्थ की सिद्धि करनी होती है। इसमें ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना, उसकी आज्ञा पालन करना, न्यायाचरण अर्थात् धर्म का ज्ञान और अनुष्ठान यथावत् करना। मनुष्य इसके द्वारा मोक्ष-प्राप्ति में प्रवृत्त होता है।

जब मोक्ष अर्थात् केवल परमेश्वर की ही प्राप्ति के लिये धर्म से युक्त सब कर्मों का यथावत् पालन किया जाय तो यही निष्काम मार्ग है, क्योंकि इसमें संसार के भोगों की कामना नहीं की जाती। इसका फल सुखरूप और अक्षय होता है।

दूसरा मार्ग- लोकव्यवहार सिद्धि। इससे धर्म के द्वारा अर्थ, काम और उनकी सिद्धि करने वाले साधनों की प्राप्ति होती है। यह सकाम मार्ग है, क्योंकि इसमें संसार के भोगों की इच्छा से, धर्मानुसार अर्थ और काम का सम्पादन किया जाता है। इसलिए इसका फल नाशवान् होता है, जन्म-मरण का चक्र छूटता नहीं।

अग्निहोत्र से ले के अश्वमेध (राष्ट्रसेवा, राष्ट्रपालन, देश-रक्षण, राष्ट्र-समृद्धि, राष्ट्रविस्तार) पर्यन्त यज्ञ आदि इसके अन्तर्गत हैं।

विहित और निषिद्ध रूप में कर्म दो प्रकार के होते हैं। वेद में कर्त्तव्यरूप से प्रतिपादित ब्रह्मचर्य सत्यभाषणादि विहित हैं, वेद में अकर्त्तव्यरूप से निर्दिष्ट व्यभिचार, हिंसा, मिथ्याभाषणादि निषिद्ध हैं। विहित का अनुष्ठान करना धर्म, उसका न करना अधर्म और निषिद्ध का करना अधर्म और न करना धर्म हैं (स. प्र. ४१७, ११ समु.)

(३) उपासना काण्ड- जैसे ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं, उनको वैसा जान अपने को वैसा करना, योगाभ्यास द्वारा इनका साक्षात् करना, जिससे परमेश्वर के ही आनन्दस्वरूप में अपने आत्मा को मग्न करना होता है, उसको उपासना कहते हैं।

यह कोई यान्त्रिक व ज्ञानरहित क्रिया नहीं, जैसे बिना

समझे किसी शब्द का या वाक्य का बार-बार जाप करना।

(४) ज्ञान काण्ड- वस्तुओं के साधारण परिचय को ज्ञान कहते हैं (स. प्र. ४४. २ समु.)

(क) उपासना-काण्ड, ज्ञान-काण्ड तथा कर्मकाण्ड के निष्काम भाग में भी परमेश्वर ही इष्टदेव, स्तुति, प्रार्थना, पूजा और उपासना करने के योग्य है। कर्मकाण्ड के निष्काम भाग में तो सीधे परमात्मा की प्राप्ति की ही प्रार्थना की जाती है, परन्तु उसके सकाम भाग में अभीष्ट विषय के भोग की प्राप्ति के लिये परमात्मा की प्रार्थना की जाती है।

अपरा विद्या, परा विद्या

वेद में दो विद्या हैं अपरा और परा। जिससे पृथिवी और तृण से ले के प्रकृति, जीव और ब्रह्मपर्यन्त सब पदार्थों के गुणों के ज्ञान से ठीक-ठीक कार्य सिद्ध करना होता है वह 'अपरा' और जिससे सर्वशक्तिमान् ब्रह्म की प्राप्ति होती है वह परा विद्या है। इनमें 'परा' विद्या 'अपरा' विद्या से अत्यन्त उत्तम है, क्योंकि 'अपरा' विद्या का ही उत्तम फल 'परा' विद्या है।

धर्मशास्त्र

वस्तुतः ये ईश्वरोक्त सत्यविद्यामय चारों वेद ही सब मनुष्यों के पवित्र आदि धर्मग्रन्थ और सच्चे विद्या पुस्तक (आ. वि. ४०, ऋ. भू. ७९७) (और सर्वोच्च धर्मशास्त्र ग्र. क.) हैं। इनकी शिक्षाओं पर आचरण करना मनुष्य मात्र का परम कर्त्तव्य है। 'ईश्वर की आज्ञा है कि विद्वान् लोग देश-देश और घर-घर जाके सब मनुष्यों को इनकी सत्यविद्या का उपदेश करें (ऋ. भू. ६६१)।' क्योंकि जो ग्रन्थ सत्यविद्याओं के प्रतिपादक हों, जिनसे मनुष्यों को सत्य-शिक्षा और सत्यासत्य का ज्ञान होता हो, ऐसे शास्त्रों के स्वाध्याय एवं तदनुकूल आचरण से शरीर, मन, आत्मा शुद्ध होते हैं (आ. उ. र. ९४)।

सत्यासत्य के निर्णायक साधन

धर्माधर्म के ज्ञान अर्थात् सत्यासत्य के निर्णय के लिये चार साधन हैं।

१. सबसे मुख्य वेद (अर्थात् श्रुति), ये ईश्वरकृत होने से स्वतः प्रमाण हैं।

२. दूसरा स्मृति अर्थात् वेदानुकूल आप्तोक्त मनुस्मृत्यादि (स. प्र. १० स., ३४४) धर्मशास्त्र, इनका प्रमाण वेदाधीन है, वेद के साथ विरोध होने पर ये अप्रमाण ठहरते हैं।

३. तीसरा सदाचार अर्थात् सज्जन धर्मात्मा आप्तजनों का सृष्टि के आदि से चला आ रहा वेदोक्त आचरण (=सनातन अर्थात् वेद द्वारा परमेश्वर प्रतिपादित कर्म (स. प्र. ३ स., ६२) धर्मानुरागी पूर्वजों का धर्म शिक्षानुकूल बर्त्ताव। उप. मं. ९/१४३ तथा १२/१८०)। जो सत्पुरुष हो चुके हैं, उन्हीं का अनुकरण मनुष्य लोग करें (य. आ. भा. १२/११)।

४. चौथा अपने आत्मा का साक्षित्व (=प्रियता) है, अर्थात् जिसको आत्मा चाहता है, जैसा कि सत्य भाषण (स. प्र. ६२-६४, ३ स., ११ स., ५०३, ऋ. भू. २१४)।

ऊपर मुख्य-मुख्य विषयों पर ऋषि दयानन्द का अभिप्राय लिखा है। वेदार्थ कितने प्रकार का है, वेदार्थ के मुख्य साधन, ऋषि, देवता, छन्द, स्वर आदि के सम्बन्ध में ऋषि का अपना स्पष्ट मत है।

आर्योदय, वेदांक, मार्च १९६६ से साभार

वर्णवस्था का सारांश

विद्या और धर्म के प्रचार का अधिकार ब्राह्मण को देना, क्योंकि वे पूर्ण विद्यावान और धार्मिक होने से उस काम को यथायोग्य कर सकते हैं।

क्षत्रियों को राज्य के अधिकार देने से कभी राज्य की हानि व विघ्न नहीं होता।

पशुपालनादि का अधिकार वैश्यों को ही होना योग्य है, क्योंकि वे इस काम को अच्छे प्रकार कर सकते हैं।

शूद्र को सेवा का अधिकार इसलिए है कि वह विद्यारहित मूर्ख होने से विज्ञानसम्बन्धी काम कुछ भी नहीं कर सकता, किन्तु शरीर के सब काम कर सकता है। इस प्रकार वर्णों को अपने-अपने अधिकार में प्रवृत्त करना राजा आदि सभ्य-जनों का काम है।

(स. प्र. स. ४)

राष्ट्रीयता पर पाश्चात्य प्रभाव

मोहनलाल तँवर

यह उस समय की घटना है जब आर्य संस्थाओं पर ब्रिटिश हुकूमत की कुटिल दृष्टि थी। इसी भय के अन्तर्गत गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार को भी ब्रिटिश हुकूमत के जासूस इसी दृष्टिकोण से देखते थे। एक बार अंग्रेज जासूसों ने वहाँ पर छापा मारा और गुरुकुल के संस्थापक महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) से पूछा कि तुम्हारे इस विद्यालय में बम बनाने की सूचना मिली है। स्वामी जी ने कहा, सूचना बिल्कुल सही मिली है। गुप्तचर बोला, हम तलाशी लेंगे। स्वामी जी ने कहा, बिल्कुल लो। वहाँ पर गुप्तचरों को कुछ भी नहीं मिला तो उन्होंने स्वामी जी से कहा, यहाँ तो कुछ नहीं मिला, सही-सही बताओ तुम्हारी बम बनाने की फैक्ट्री कहाँ पर है। स्वामी जी ने कहा, बम बनाने की फैक्ट्री यही गुरुकुल है। तुमने गुरुकुल के विद्यार्थियों को नहीं देखा, यही इस फैक्ट्री में निर्मित किये गये बम हैं जो एक रोज विस्फोट करेंगे तो ब्रिटिश साम्राज्य की जड़ें हिलाकर रख देंगे।

इस घटना का उल्लेख इसलिए किया गया है कि आज जो अंग्रेजी मिडियम के स्कूल हैं वहाँ भी यही प्रश्न पूछा जाय तो संचालक तो कुछ नहीं कहेंगे, परन्तु हकीकत यही है कि उन स्कूलों में बम के स्थान पर फुलझड़ियाँ तैयार की जा रही हैं, जो अभिभावकों को फुर्र-फुर्र कर के खुश कर देती हैं। ऐसे घरों में आये हुये मेहमानों को अपनी शान दिखाने के लिए जब अपने कान्वेंटगामी बच्चों से कहते हैं बेटा, अंकल आंटी को पॉइम सुनाओ तो बच्चा उन्हें सुनाता है "बाबा-बाबा ब्लैकशिप" "ट्विंकल ट्विंकल लिटिल स्टार" तो अंकल आंटी भी बच्चे का मन रखने के लिए ताली पीट देते हैं, बच्चा भी खुश अभिभावक भी खुश। ये ४-५ वर्ष के बच्चे जब २० किलो का बस्ता ढोते हैं तो उस बोझ से उनकी बुद्धि इतनी सीमित हो जाती है कि वे तोता रटन्तरी के अतिरिक्त कुछ नहीं जानते। कान्वेंट स्कूल के पाँचवी कक्षा के बच्चे को एक मैम (टीचर) ने दीपावली पर निबन्ध लिखने को कहा, तो बच्चे बोले, मेम पहिले आप इस विषय पर कुछ हमें समझा दो तो हम कल आपको निबन्ध लिखकर दिखा देंगे।

टीचर ने जो कुछ उन्हें बतलाया वो इस प्रकार है, डीवाली गॉडेस लक्ष्मी का फेस्टीवल है, उस रोज बच्चा, बूढ़ा, जवान, मरद, औरत बहुत अच्छा कपड़ा पहनता है। अमीर आदमी घरों पर व्हाइट वाश करवाता है। गरीब लोग काऊडंक (गोबर) से घरों को लीपता है। रात को गोडेस का पूजा होता है। मिलकर गॉडेस को पैसा के लिए प्रेयर करते हैं। बच्चा लोग क्रेकर्स फोड़ते हैं। तरह-तरह की क्वालिटी का स्वीट खाते हैं। कोई मिट्टी का लैम्प जलाता है, कोई बिजली का कलर्ड लाइट करता है। दीपावली बहुत अच्छा फेस्टीवल है। बच्चा लोग! आप क्रेकर्स कम फोड़ना। कई बार एक्सीडेन्ट हो जाता है। आदमी जल जाता है, घर जल जाता है। स्वीट भी कम खाना, इससे आगे जाकर डाईबिटीज हो जाता है। वैसे देखा जाय तो दीपावली बहुत ही इन्ट्रेस्टिंग फेस्टीवल है।

अब आगे सोचिये कि यहाँ पढ़ाये गये बच्चे भारतीय संस्कृति, संस्कारों के विषय में क्या जान सकेंगे। इन्हीं कान्वेंट-पाठी बच्चों ने जब बारहवीं उत्तीर्ण कर ली और सरकारी कॉलेज में प्रवेश हेतु गये तो इनको एक साधारण सा प्रश्न पूछा गया कि बतलाओ राष्ट्रगान में किन-किन प्रान्तों के नाम है तो उन्होंने पंजाब, सिन्ध, गुजरात, मराठा के साथ 'उच्छल जलद तंरग' को भी प्रदेशों में शामिल कर लिया।

आज जो बड़े-बड़े गुरुकुल विश्वविद्यालयों में उन्नत हो गये, वहाँ भी आर्ष पाठ्यक्रम कहाँ लागू है? जहाँ वेद पढ़ाये भी जाते होंगे तो तथाकथित वेद मर्मज्ञ भी वहाँ महर्षि दयानन्द के स्थान पर सायण का भाष्य पढ़ाते हैं। बहुत कम गुरुकुल बचे हैं जहाँ महर्षि द्वारा सत्यार्थप्रकाश में वर्णित आर्ष पाठ्यक्रम पढ़ाते होंगे। यह पढ़ाई तो उन्हीं गुरुकुलों में होती होगी, जहाँ पर त्यागी, तपस्वी अध्यापक, अध्यापिकायें होंगी, अन्यथा तो महर्षि के नाम से जुड़ी सभी संस्थायें सरकारी उपक्रम बन गये, जहाँ वेतनभोगी लोग सत्ताधारियों की आज्ञा से पाठ्यक्रम तैयार करते हैं,

जिनका विद्यार्थियों के देशभक्त होने तथा अपनी संस्कृति को समझने का तनिक भी माद्दा नहीं होता।

महर्षि दयानन्द से प्रभावित महान् लेखक प्रेमचन्द, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, मुक्तिबोध के साहित्य को तो तथाकथित प्रगतिशील लेखक कूड़ा-कचरा साहित्य बताते हैं। उनका कहना है कि यह सब बेकार की बातें लिखते है, जिसमें हिन्दुस्तान के दमित, दलित लोगों के फूहड़ किस्से होते हैं। इनसे पूछो कि क्या गोदान फूहड़ उपन्यास है अथवा 'राम की शक्ति-पूजा' निराला द्वारा खण्ड-काव्य क्या गर्हित कविता है। आज तथाकथित प्रगतिशील साहित्यकार यथा अरुन्धति राय व विक्रम सेठ जैसे जो कुछ समाज को दे रहे हैं, उसका संबन्ध न तो हमारे भारतीय परिवेश से है, ना धर्म, संस्कृति, संस्कार, सभ्यता से है, परन्तु आज उनका वह फूहड़ साहित्य उनको करोड़पति बना रहा है। हमारे प्रेमचन्द, निराला, मुक्तिबोध निर्धनता में मरे हैं। अन्त में तो इन महान् साहित्यकारों का भूख से स्मृति-भ्रंश भी हो गया था। अंग्रेजी साहित्य लेखक अपार सम्पदा कमा रहे हैं।

सैकड़ों वर्षों की गुलामी ने हमारे आत्मगौरव को मार दिया। अंग्रेजी उपन्यासों ने लेखकों को पूंजपति बना दिया। कहते हैं कि रवीन्द्रनाथ टैगोर को नोबल पुरस्कार तभी मिला था जब 'गीतान्जलि' का अनुवाद किसी डब्ल्यू.वी. विट्स नाम के आयरिश कवि ने अंग्रेजी भाषा में किया था। वास्तव में यह सम्मान रवीन्द्रनाथ की गीतान्जलि को नहीं बल्कि अंग्रेजी अनुवाद को मिला था। हम जिस महान् कवि की प्रशंसा करते हैं, जिनका नाम हरिवंश राय बच्चन है। उनको भी न जाने क्या सूझा कि इस पुरस्कार पर इतना तो लिखते कि यह भारतीय भाषा का अपमान है, बल्कि इस बात की प्रशंसा में उन्होंने निम्न कविता लिख दी-

''चांदी की गीतान्जलि पर तुमने फेर दिया सोने का पानी
मैं नतशीश तुम्हारे आगे, आयर के शायर अभिमानी।''

अर्थात् अंग्रेजी के सोने का मुल्लमा चढ़ाया तभी गीतान्जलि पुरस्कार योग्य बनी, पहिले तो उस पर लोहे या पीतल का वर्क ही चढ़ा हुआ था।

वेदों के भाष्य तो हम अंग्रेजी में करा सकते हैं, परन्तु उनकी ऋचाओं को कैसे अंग्रेजी में लिखेंगे? यदि लिख दिया तो अर्थ का अनर्थ नहीं हो जायेगा? और बिना संस्कृत के मन्त्र पढ़े उनका अंग्रेजी में अनुवाद पढ़ना बेकार है। मन्त्रों पर तो ईश्वर का मुलम्मा चढ़ा हुआ है, जिसके आगे सभी आवरण व्यर्थ हैं। वेदमन्त्र अंग्रेजी में कोई लिख ही नहीं सकता।

हमें स्वतन्त्र हुए ७० वर्ष से भी अधिक समय हो गया, परन्तु इस अवधि में बाजारवाद को उन्नति देने वाला ज्ञान, मारक शस्त्रों का निर्माण, आकाश, समुद्र, धरती को सुरक्षित रखने वाली सेनायें तो बढ़ी हैं, परन्तु इसके साथ-साथ अन्धविश्वास, सामाजिक कुरीतियाँ, बाबाओं की दुकानें, मठ, तन्त्र-मन्त्र फलित ज्योतिष, मूर्तिपूजा आदि गलत परम्परायें भी तीव्रगति से बढ़ी हैं। हमारे वोटार्थी नेता कब्रों पर, पत्थरों पर बाबाओं के चरणों पर जब तक माथा टेकते हुए फिरेंगे तो जनता का प्रगतिशील होना लगभग असंभव है। मुझे तो लगता है हम जितने वर्ष गुलाम रहे उतने ही वर्ष सुधरने में लगेंगे, क्योंकि हर उत्थान के बाद पतन और पतन के बाद उत्थान हुए हैं। वैदिक धर्म को बौद्ध, जैनधर्म तथा वाममार्गियों ने नष्ट कर दिया, थोड़ा बहुत वैदिक धर्म जो बचा है वह १९ शताब्दी के युगप्रणेता महर्षि दयानन्द सरस्वती के कारण बचा है। रामराज्य का, यदुवंश का, कुरुवंश का जो उत्थान के पश्चात् पतन हुआ, वह सर्वविदित है।

अब यदि पाश्चात्य विचारों, परम्पराओं को समाप्त करना है तो हमें महर्षि दयानन्द के एक-एक सिद्धान्त को अपनाना होगा तथा उन्हीं सिद्धान्तों को लेकर आर्यसमाज को संगठित करना होगा, इसी में भारतवर्ष का कल्याण है।

पंडित किसे कहें?

जिनकी सुनी हुई और पठित विद्या अपनी बुद्धि के सदा अनुकूल और बुद्धि और क्रिया सुनी पढ़ी हुई विद्याओं के अनुसार जो धार्मिक श्रेष्ठ पुरुषों की मर्यादा का रक्षक और दुष्ट डाकुओं की रीति को विदीर्ण करनेहारा मनुष्य है, वही पण्डित नाम धराने के योग्य है।

(व्य. भा.)

क्या आप प्रतिदिन अतिथि यज्ञ नहीं कर पाते?
तो आइये, अतिथि यज्ञ के होता बनिये

वैदिक नित्यकर्मों में अतिथि यज्ञ प्रतिदिन करना अनिवार्य है, किन्तु आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं, फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय? इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और उसको एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय।

यह अल्प राशि आप दैनिक संचय घट में जमा भी कर सकते हैं, वर्ष में लोग अरबों रुपए आग में पटाखे जलाकर व्यय करते हैं, असावधानी से बिजली जलती छोड़ इसे गंवा देते हैं आदि ऐसी छोटी-छोटी असावधानियों को रोक कर हम उसकी बचत राशि इस पावन कृत्य हेतु सभा को वर्ष में आसानी से दे सकते हैं।

सभा के धार्मिक क्रियाकलापों एवं आवासीय स्थल ऋषि उद्यान में उपर्युक्त पावन क्रियाकलाप लम्बे समय तक अबाध चलते रहें, इसके लिए सभा की योजना है कि प्रतिदिन १० रुपये अथवा प्रतिवर्ष ५ हजार की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी सदस्यों में अंकित किया जाता है ऐसे सज्जनों के नाम का परोपकारी में प्रकाशित भी किय जात है।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है अधिक से अधिक लोग परोपकारिणी सभा से जुड़ सकें, आप ऐसा करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को आगे बढ़ाने में सहायक होंगे इसलिए ऐसी राशि निश्चित की है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे तो उन्हें उनके जन्मदिवस आदि पर परोपकारिणी सभा की ओर से दूरभाष द्वारा आशीर्वाद प्रदान किया जायेगा। यदि उस शुभ अवसर पर वे स्वयं उपस्थित होकर यजमान बनें तो यह सर्वोत्तम होगा।

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अतिथि-यज्ञ के होताओं से उनकी वैवाहिक वर्षगाँठ अथवा जन्मदिन व विभिन्न अवसरों पर ५१०० रु. प्रतिवर्ष सभा को प्राप्त होते रहते हैं। जो महानुभाव संकल्प के साथ इस पुनीत कार्य से जुड़े हुए हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है। आप अपनी राशि सभा के बैंक खाते में नकद अथवा चैक द्वारा जमा करा सकते हैं।

परोपकारिणी सभा की गतिविधियाँ

परोपकारिणी सभा महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित उनकी उत्तराधिकारिणी सभा है और केवल नाम से ही नहीं, बल्कि अपने कार्यों से भी वह ऋषि के उत्तराधिकार के दायित्व को पूर्णतया निभा रही है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इस सभा की स्थापना के समय तीन उद्देश्य रखे थे।

१. वेदादि सत्यशास्त्रों का प्रकाशन २. विद्वान् उपदेशक तैयार करके देश-विदेश में वैदिक धर्म का प्रचार एवं ३. आर्यावर्त्तीय दीन-दरिद्रों की सेवा।

इन सभी कार्यों को सभा अपने विभिन्न प्रकल्पों के माध्यम से पूरा करने में सर्वसामर्थ्य से लगी हुई है। यद्यपि सभा के पास आर्थिक आय का कोई स्थाई माध्यम नहीं है, पुनरपि ऋषिभक्तों एवं आर्यजनों के सहयोग और विश्वास पर ही सभा ने बड़े-बड़े कार्यों को प्रारम्भ किया और निरन्तर कर भी रही है। आचार्य डॉ. धर्मवीर जी, जो कि वर्तमान में परोपकारिणी सभा के प्रधान एवं मूल स्तम्भ थे, उनका कहना था कि "**कार्य यदि अच्छा है तो उसे प्रारम्भ कर देना चाहिये, सहयोग तो स्वयं ही मिल जाता है।**" यही शैली अपनाकर आज भी वैदिक विचार के प्रचार का कार्य निरन्तर जारी है। डॉ. धर्मवीर जी के जाने से सभा को बड़ा आघात अवश्य लगा है, परन्तु आर्यों का स्नेह, भरोसा उनके द्वारा प्रारम्भ किये गये कार्यों को रुकने नहीं देगा-ऐसा सभा को पूर्ण विश्वास है।

परोपकारिणी सभा आज अनेक कार्यों, माध्यमों से इस वेद प्रचार यज्ञ में लगी है, जिसकी सूची यहाँ दी जा रही है-

भव्य ऋषि उद्यान आश्रम, अतिथि यज्ञ, भोजनशाला, गौशाला, वानप्रस्थ एवं संन्यासाश्रम, गुरुकुल, परोपकारी पत्रिका, प्रकाशन, योग साधना एवं चरित्र निर्माण शिविर, सत्यार्थ प्रकाश व ऋषि जीवन चरित्र का निःशुल्क वितरण, पाण्डुलिपियों का डिजिटलाइजेशन, पुस्तकालय, औषधालय, देश-देशान्तरों में वेद-प्रचार, आयुर्वेदिक औषधालय।

दयानन्द धर्मार्थ चिकित्सालय

परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित ऋषि उद्यान में वर्ष २०१२ से आयुर्वेदिक चिकित्सालय चल रहा है। चिकित्सालय में उपलब्ध सभी औषधियाँ निःशुल्क दी जाती हैं।

दानी महानुभावों से सहयोग की भी अपेक्षा है।

परोपकारिणी सभा में आयुर्वेदिक चिकित्सक की आवश्यकता

सभा द्वारा संचालित आयुर्वेदिक चिकित्सालय के लिये योग्य आयुर्वेदिक चिकित्सक की आवश्यकता है। चिकित्सालय में सेवा देने का समय प्रतिदिन २ घण्टे है। आवास, भोजन आदि की व्यवस्था सभी की ओर से ही होगी।

सम्पर्क- ०१४५-२६२१२७०, ९४६०४२११८३

परोपकारिणी सभा के प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715**

IFSC-SBIN0007959

२. बैंक का नाम-**आई.डी.बी.आई**, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**091104000057530**

IFSC-IBKL0000091 email : psabhaa@gmail.com

दानदाताओं की सूची

अतिथि यज्ञ के होता

(०१ से १५ मार्च २०१९ तक)

१. श्री श्रद्धानन्द, दिल्ली २. श्री बाबू लाल चौहान, अजमेर ३. श्री प्रकाश चतुर्वेदी, मुंबई ४. श्री पुष्कर गोयल, मुजफ्फरनगर।

गोभक्तों से निवेदन

ऋषि-उद्यान में परमार्थ हेतु गौशाला संचालित है। गोशाला की गौवों के दूध का वितरण सभी गुरुकुलवासियों, संन्यासियों एवं आगन्तुक अतिथियों में नि:शुल्क किया जाता है। आप सभी गौ-भक्तों एवं उदारमना दानदाताओं से सभा का निवेदन है कि गौवों को उत्तम चारा मिले, इसके लिए जो भी सज्जन चारा दान देना चाहें उनका स्वागत है। यदि आप दूरस्थ प्रदेश के हैं तो कृपया चारे हेतु अनुमानित राशि सभा को ड्राफ्ट/चैक/नगद भेज सकते हैं। यशस्वी दानदाताओं के नाम परोपकारी पत्रिका में प्रकाशित किए जाएँगे। आपका दान गौवों के संवर्धन में सहायक होगा।

ऋषि-उद्यान में संचालित गौशाला के दानदाता

(०१ से १५ मार्च २०१९ तक)

१. डॉ. अर्जुन देव तनेजा, नई दिल्ली २. श्री विनय कुमार गोयल, जीन्द ३. श्री दुर्गाप्रसाद श्रीवास्तव, लखनऊ ४. श्री अलंकार कौशल, अजमेर ५. श्री बलवीर सिंह, अजमेर ६. श्री सुभाष महाजन, पठानकोट ७. श्री शिवचरण अरोड़ा, पठानकोट ८. श्रीमती संजना शर्मा, अजमेर ९. डॉ. वेदप्रकाश 'विद्यार्थी', अजमेर १०. श्रीमती रमेश, श्रीनगर, अजमेर ११. कै. चन्द्रप्रकाश त्यागी व श्रीमती कमलेश त्यागी, रुड़की १२. श्री हरसहाय सिंह आर्य, बरेली १३. मै. विमल पेपर्स प्रा. लि., मुम्बई १४. श्री सी.एल. भण्डारी, ठाणे।

परोपकारिणी सभा द्वारा आयोजित आगामी कार्यक्रम

१. १२ से १९ मई, २०१९ - **आर्यवीर दल शिविर**

२. २२ से २९ मई, २०१९ - **आर्य वीराङ्गना शिविर**

३. १६ से २३ जून, २०१९- **योग-साधना शिविर**

४. १३ से २० अक्टूबर, २०१९- **योग-साधना शिविर**

५. ०१, ०२, ०३ नवम्बर २०१९- **ऋषि मेला**

ऋषि उद्यान में होने वाले कार्यक्रमों के लिए

सम्पर्क सूत्र- ०९४६०४२११८३, ०१४५-२४६०१६४, ०१४५-२६२१२७०

(परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित)

योग—साधना शिविर

दिनांक : १६ से २३ जून २०१९

आर्यसमाज के उच्चकोटि के विद्वान् व साधकों के निर्देशन में परोपकारिणी सभा योग साधना शिविर का आयोजन कर रही है। अपने आध्यात्मिक जीवन को गति प्रदान करने में ये शिविर सहयोगी होगा।

इच्छुक प्रार्थियों हेतु नियम व अनुशासन

१. प्रत्येक प्रार्थी के लिए पूर्ण मौन अनिवार्य होगा।

२. शिविर के काल में किसी साधक के द्वारा नियम व अनुशासन भंग करने पर उसे शिविर के मध्य में ही शिविर छोड़ने के लिए बाध्य किया जा सकता है।

३. पूरे शिविर में साधक के द्वारा किसी भी माध्यम से बाह्य-सम्पर्क करना निषिद्ध रहेगा।

४. शिविर काल में किसी भी साधक को ऋषि उद्यान परिसर से बाहर जाने की अनुमति नहीं होगी।

५. साधकों की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति ऋषि-उद्यान परिसर में ही की जायेगी।

६. बाह्य-वृत्ति उत्पादक साधनों जैसे- समाचार-पत्र पढ़ना, आकाशवाणी श्रवण व दूरदर्शन देखने आदि पर पूर्ण प्रतिबन्ध रहेगा।

७. किसी प्रकार का शारीरिक रोग यथा- खाँसी, जुकाम अथवा अन्य कोई ध्वनि उत्पादक रोग वाले को प्रवेश नहीं दिया जायेगा।

८. बच्चों को साथ लाये जाने पर प्रार्थी को शिविर में प्रवेश नहीं दिया जाएगा।

९. शिविर के प्रारम्भ दिन से लेकर समापन-सत्र पर्यन्त पूर्ण रूप से शिविर में भाग लेना अनिवार्य होगा।

१०. नियम व अनुशासन के पालन को आवेदन में ही लिखित स्वीकार करना होगा।

उपरिलिखित किसी भी नियम व अनुशासन का पालन करने में असमर्थ व अयोग्य प्रार्थी को शिविर में प्रवेश नहीं दिया जायेगा।

प्रार्थियों के लिए सूचनाएँ- परोपकारिणी सभा, केसरगंज, अजमेर (राज.) कार्यालय से (०१४५-२४६०१६४) से संपर्क कर शिविर से पूर्व शुल्क जमा करवा कर अपने नाम का पंजीयन करा लें। शिविर में माता-बहिनें भी भाग ले सकती हैं। पुरुषों एवं महिलाओं के आवास की सामूहिक व्यवस्था पृथक्-पृथक् की जाती है। पृथक् कक्ष चाहने वालों को अतिरिक्त शुल्क १००० से २००० रु. देय होता है। पृथक् कक्ष की व्यवस्था पूर्व सूचना व उपलब्धता के अनुसार की जाती है। ऋषि उद्यान में दरी, गद्दे, तकिए एवं बर्तन उपलब्ध हैं, शेष दैनिक उपयोग की वस्तुएँ यथा मंजन, ब्रश, साबुन, तेल, दवाएँ, बिछाने-ओढ़ने की चादरें, लिखने के लिए संचिका (नोटबुक), लेखनी, करदीप (टार्च) आदि को साधक अपने साथ लाएँ। वस्त्र सादगी एवं शिष्टाचार के अनुकूल हों, आभूषणों एवं सुगन्धित द्रव्यों का उपयोग न हो। आपके पास योगदर्शन हो तो साथ लाएँ। सतर्कता की दृष्टि से कीमती वस्तुएँ साथ न लायें। यदि आपको कोई संक्रामक रोग, तेज खांसी, दमा, मिर्गी आदि मानसिक रोग, वायु विकार या अन्य गंभीर रोग हो, तो कृपया शिविर में आना स्थगित रखें। लौटने का रेल-आरक्षण शिविर में आने से पूर्व करवा लें। अजमेर पहुँचने की सूचना घर पर देनी हो तो शिविर स्थल में प्रवेश से पहले दे देवें। खाने-पीने की वस्तुएँ साथ न

लावें।

यह शिविर परोपकारिणी सभा, अजमेर के सौजन्य से आयोजित किया जा रहा है। शिविर शुल्क १००० रु. मात्र जमा करना होगा। शिविर में भाग लेने वालों को शिविर के प्रारंभ दिनांक को सायं चार बजे तक शिविर स्थल ऋषि उद्यान, पुष्कर मार्ग, अजमेर (०१४५-२६२१२७०) में पहुँच जाना आवश्यक है क्योंकि इसी दिन शाम को शिविर के अनुशासन एवं विभिन्न व्यवस्थाओं संबन्धी महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ दी जाएँगी। शिविर का समापन अन्तिम दिन दोपहर एक बजे तक होगा। शिविर समाप्ति से पूर्व जाने की अनुमति नहीं दी जायेगी।

शिविर से आपका जीवन श्रेष्ठतर व पवित्रतर बने, इन्हीं शुभकामनाओं के साथ।

मन्त्री, परोपकारिणी सभा, केसरगंज, अजमेर दूरभाष : ०१४५-२४६०१६४

: मार्ग :

ऋषि उद्यान शिविर स्थल पर पहुंचने के लिए फॉयसागर की ओर जाने वाली सिटी बस या ऑटो-रिक्शा, रेलवे स्टेशन व बस स्टेण्ड से (वाया-आगरा गेट/फव्वारा चौराहा) सर्वदा सुलभ रहते हैं।

email:psabhaa@gmail.com

संयोजक

वैदिक पुस्तकालय अजमेर द्वारा प्रकाशित पुस्तकों पर विशेष छूट

१. कुल्लियाते आर्य मुसाफिर (पं. लेखराम ग्रन्थ संग्रह)- दो भाग

लेखक- पण्डित लेखराम

सम्पादक- प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु, अबोहर, पंजाब

मूल्य- रुपये ~~१०००~~/- **छूट पर**- ६००/-

२. महर्षि दयानन्द का पत्र-व्यवहार (दो भाग में)

मूल्य - रुपये ~~८००~~/- छूट पर - ५००/-

३. अष्टाध्यायी भाष्य- ३ भाग (१ सैट)

भाष्यकार- महर्षि दयानन्द सरस्वती

मूल्य- रुपये ~~५००~~/- **छूट पर**- ३५०

पुस्तकें हेतु सम्पर्क करें:-

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु

खाता धारक का नाम - **वैदिक पुस्तकालय, अजमेर। दूरभाष - 0145-2460120**

बैंक का नाम - **पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या - **0008000100067176**

IFSC - PUNB0000800

आर्यजगत् के समाचार

१. वार्षिकोत्सव मनाया- नगर आर्यसमाज रकाबगंज, लखनऊ का १२५वाँ वार्षिकोत्सव दिनाङ्क २,३,४ मार्च २०१९ को अत्यन्त हर्षोल्लास के साथ मनाया गया। वार्षिकोत्सव में आर्य उपदेशक आचार्य आर्यनरेश जी (हि.प्र.) तथा भजनोपदेशक श्री दिनेश पथिक जी (अमृतसर) से पधारे।

आर्य जिला प्रतिनिधि सभा के नेतृत्व में दिनाङ्क ०४/०३/२०१९ को बृहत् शोभा यात्रा निकाली गई जो कि दयानन्द बाल सदन, मोतीनगर से प्रारम्भ होकर नगर आर्यसमाज, रकाबगंज पर सम्पन्न हुई।

२. शिविर का आयोजन- बेंगलुरु में १ से १५ जुलाई २०१९ तक वैदिक योगविद्या और ध्यान-उपासना की आर्ष पद्धति पर १५ दिवसीय शिविर का आयोजन किया जा रहा है। शिक्षक-डॉ. हरिश्चन्द्र (आचार्य, आर्यसमाज ह्यूस्टन, अमेरिका) प्रतिदिन पूर्वाह्न, अपराह्न और सायं एक वा डेढ़ घण्टे के सैद्धान्तिक सत्र और दो उपासना सत्र। सम्पर्क-ईमेल-harish_divs@yahoo.com मोबाइल (Whatsapp) +१ ८३२८७४३२४८

शिविर का माध्यम हिन्दी है। आवास और भोजन नि:शुल्क। आपको पंजीकरण की लिखित पुष्टि मिलने पर ही यात्रा पर प्रस्थान करें।

३. बोध-उत्सव सम्पन्न- आर्यसमाज, सरदार पटेल मार्ग, खलासी लाइन, सहारनपुर में महर्षि दयानन्द सरस्वती बोध-उत्सव का आयोजन किया गया। पं. सुरेन्द्र कुमार के पौरोहित्य में यज्ञ सम्पन्न हुआ। पं. योगराज शर्मा व आजाद सिंह 'लहरी' की भजनमण्डली ने भजनों के माध्यम से सार्थक सन्देश दिया।

४. गुरुकुल शिक्षा सम्मेलन- आर्यसमाज सांताक्रुज, मुंबई में आर्य प्रतिनिधि सभा के सौजन्य से वैदिक मिशन मुंबई के द्वारा 'गुरुकुल शिक्षा सम्मेलन' का भव्य आयोजन २२,२३ व २४ मार्च २०१९ को क्यिा गया। इस संगोष्ठी में गुरुकुलों की उपयोगिता, उनके पाठ्यक्रम का वैदिक स्वरूप, उनके पाठ्यक्रम की एकरूपता तथा गुरुकुलों की समस्याओं पर चिन्तन मनन किया गया और भावी रूपरेखा तैयार की गई।

५. आर्योपदेशक पाठ्यक्रम प्रशिक्षण- आत्मानन्द श्रुतिधाम, ग्राम -भड़ताना, जिला-जीन्द, हरियाणा में ध्यान-उपासना में रुचि रखने वाले तथा वैदिक धर्म-संस्कृति के प्रचार-प्रसार हेतु अपनी योग्यता निर्माण करने की इच्छा रखने वाले युवकों के लिए 'आर्योपदेशक पाठ्यक्रम' निर्मित किया गया है। इस प्रशिक्षण के अन्तर्गत वर्तमान की आवश्यकतानुसार संस्कृत भाषा के साथ-साथ आंग्ल भाषा को भी विकसित करने का प्रयास सम्मिलित है। यह पाठ्यक्रम आचार्य आत्मप्रकाश जी व्याकरणाचार्य, भड़ताना, जीन्द व उनके सहयोगी अध्यापकों द्वारा चलाया जायेगा। परीक्षा देने के इच्छुक नवयुवक इस कोर्स के साथ ही १२ वीं भी कर सकते हैं। योग्यतापूर्वक अनुशासित रूप में प्रशिक्षण पूर्ण करने वाले विद्यार्थियों को 'विद्या-रत्न' की उपाधि संस्था द्वारा प्रदान की जाएगी।

आर्योपदेशक पाठ्यक्रम (द्विवर्षीय कोर्स)

(१ जून २०१९ से ३१ मई २०२१ तक) (१ मई २०१९ से **रजिस्ट्रेशन प्रारम्भ**), **आयु सीमा**-१६ से ४० वर्ष तक, **शैक्षणिक योग्यता**-दसवीं पास, **विरक्त गृहत्यागियों** के लिए नि:शुल्क।

सम्पर्क सूत्र- ९४६८०७०१३६, ९४१६७७३६१७

शोक-समाचार

६. प्रसिद्ध पत्रकार डॉ. वेदप्रताप 'वैदिक' की धर्मपत्नी **प्रो. वेदवती 'वैदिक'** का गत ४ अप्रैल को दिल्ली में निधन हो गया। उनकी आयु ७० वर्ष थी। अन्तिम संस्कार दयानन्द घाट, लोदी एस्टेट पर पूर्ण वैदिक रीति के साथ सम्पन्न हुआ। 'परोपकारी' परिवार की विनम्र श्रद्धाञ्जलि।

७. आर्यलेखक **प्रा. डॉ. चन्द्रकान्त गर्जे** का देहावसान- वैदिक साहित्य के मराठी लेखक व विद्वान प्रा. डॉ. चन्द्रकान्त गर्जे का दिनांक १७ जनवरी को निधन हो गया है उनकी आयु ७७ वर्ष थी। डॉ. गर्जे हिन्दी व मराठी विषय एवं वैदिक साहित्य के विद्वान् थे। आर्यसमाज की विविध साप्ताहिक व मासिक पत्रिकाओं में आप लेखन करते रहे। 'परोपकारी' परिवार की तरफ से विनम्र श्रद्धाञ्जलि।

कुर्सी पर बैठे हुए सामने के भाग का

यह चित्र सं. १९३१ (१८७५) में गिरगाँव बम्बई में उतारा गया था। इसमें ऋषि दयानन्द कपड़े पहने हुए कुरसी पर बैठे हैं, सिर पर साफा बँधा हुआ है और साथ में मुड़ी हुई बेंत भी है। इसे श्री स्वामी सत्यानन्द जी ने बम्बई से खोजा था। इस चित्र के फट जाने से पैर का कुछ भाग नष्ट हो गया है।

पगड़ी बाँधे, वस्त्र पहने, कुर्सी पर बैठे हुए

यह चित्र सं. १९३२ (सन् १८७५) में दूसरी बार बम्बई गमन के अवसर पर बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि ने तैयार किया था। इसका उल्लेख श्री देवेन्द्र बाबू द्वारा संकलित जीवन-चरित्र के पृष्ठ ३३६ में मिलता है। इस चित्र में ऋषि दयानन्द एक ओर मुँह किये पगड़ी आदि वस्त्र धारण किये हुए कुरसी पर बैठे हैं। इसे मैंने बरेली के साहकारे मोहल्ले वाले कुँवर गंगाचरण जी के पास २८ नवम्बर १९२६ को देखा था।

पगड़ी बाँधे, बैठे हुए, पुस्तक खुली हुई

इस चित्र में ऋषि दयानन्द फुन्दे वाली पगड़ी बाँधे हुए बैठे हैं, सामने पुस्तक खुली हुई है और चाँदी की मूठ वाला दण्ड पास में रखा है। अतिसार रोग के कारण शरीर कुछ दुर्बल हो रहा है। यह सं. १९३६ (सन् १८७९) में लिया गया था। इसका छोटा-सा चित्र महात्मा हंसराज जी ने रा. ब. संसारचन्द्र जी से प्राप्त करके श्री पं. भगवदत्त जी को दिया था, उसी से उन्होंने बड़ा चित्र बनवा कर दयानन्द कॉलेज के लालचन्द्र पुस्तकालय में लगवाया था।

समाधि मुद्रा में

यह चित्र सं. १९३६ (सन् १८७९) में मेरठ में खींचा गया था। इसकी प्रतिलिपि महात्मा मुन्शीराम जी (पश्चात्- श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी) कृत 'कल्याण मार्ग का पथिक' पुस्तक में लगी है। इसकी एक प्रति मुझे पत्रों का अनुसन्धान करते हुए ८ मार्च १९२७ को ऋषि भक्त रा. ब. बाबू छेदीलाल (पूर्व-ठेकेदार कमसरियट मेरठ) कानपुर वालों के भतीजे बा. जगतनारायण जी ने दूसरे चित्रों (रमा बाई, कर्नल) की पुरानी एल्बम में से निकाल कर दी थी।

वस्त्र पहने कुर्सी पर बैठे हुए हाथ में चाँदी की मूठ का दण्डा

इस चित्र में ऋषि दयानन्द सारे वस्त्र पहने हुए हैं, हाथ में चाँदी की मूठ का दण्ड लिए हुए हैं। यह देहरादून में कार्तिक या मार्गशीर्ष सं १९३७ (नवम्बर १८८०) में लिया गया था, ऐसा कहा जाता है। श्री देवेन्द्रबाबू द्वारा संकलित जीवन-चरित्र के पृष्ठ ६२४ से इतना तो स्पष्ट है कि सं. १९३७ (सन् १८८०) में देहरादून में ऋषि दयानन्द का एक चित्र लिया गया था।

कुर्सी पर बैठे हुए, मेज पर पुस्तकें तथा गुलदस्ता

यह चित्र शाहपुरा में सं. १९४० (सन् १८८३) के पूर्वार्द्ध में लिया गया था। श्री स्व. महाराजा नाहरसिंह जी ने मथुरा शताब्दी के अवसर पर आर्य चित्रावली में प्रकाशनार्थ महाशय गोविन्दराम हासानन्द को दिया था। यह चित्र 'वेदप्रकाश' देहली के सं. २०१० के 'दयानन्द ग्रन्थ संग्रह' नामक विशेषांक में छपा है।

कुर्सी पर बैठे हुए ब्र. रामानन्द के साथ

इस चित्र में ऋषि दयानन्द कुरसी पर बैठे हुए हैं, पैर में खड़ाऊँ पहने हुए हैं, पास में एक ओर ब्र. रामानन्द खड़ा है तथा दूसरी ओर मेज पर तीन पुस्तकें रखी हैं। यह चित्र सम्भवत: शाहपुरा में सं. १९४० के प्रारम्भ में लिया गया होगा। इसी चित्र को रामानन्द के पास भेजने का उल्लेख ऋषि दयानन्द के वैशाख शु. ४ सं. १९४० (१० मई १८८३) के रामानन्द के नाम लिखे पत्र में मिलता है।

नोट- श्री महाशय मामराज जी (खतौली वाले) द्वारा लिखित महर्षि दयानन्द सरस्वती के वास्तविक चित्रों का यह विवरण 'आर्यसमाज का इति[illegible]' [illegible]ं. इन्द्र विद्यावाचस्पति द्वारा लिखित) पुस्तक से लिया गया है। चित्रों की प्राप्ति सम्बन्धी विवरण के अतिरिक्त विवरण यहाँ पर अनावश्यक समझकर हटा दिया ग[illegible]

प्रेषक:
परोपकारिणी सभा
दयानन्द आश्रम, केसरगंज,
अजमेर (राजस्थान) ३०५००१